



श्री अमर भारती

वीरायतन की मासिक पत्रिका

जुलाई- 2023

वर्ष-66

अंक-06

मूल्य: रु० 10/-





**श्री ताई माँ का
पूना से वीरायतन राजगीर में शुभ आगमन**



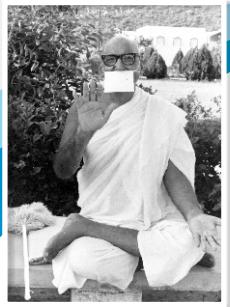
श्री अमर भारती

वीरायतन की मासिक पत्रिका

जुलाई-2023

वर्ष: 66

अंक: 07



संस्थापक
उपाध्यायश्री अमरमुनि



दिशा-निर्देश
आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी
•
सम्पादक
साध्वीश्री साधनाजी
•
महामंत्री
नवीन चंद सुचंती

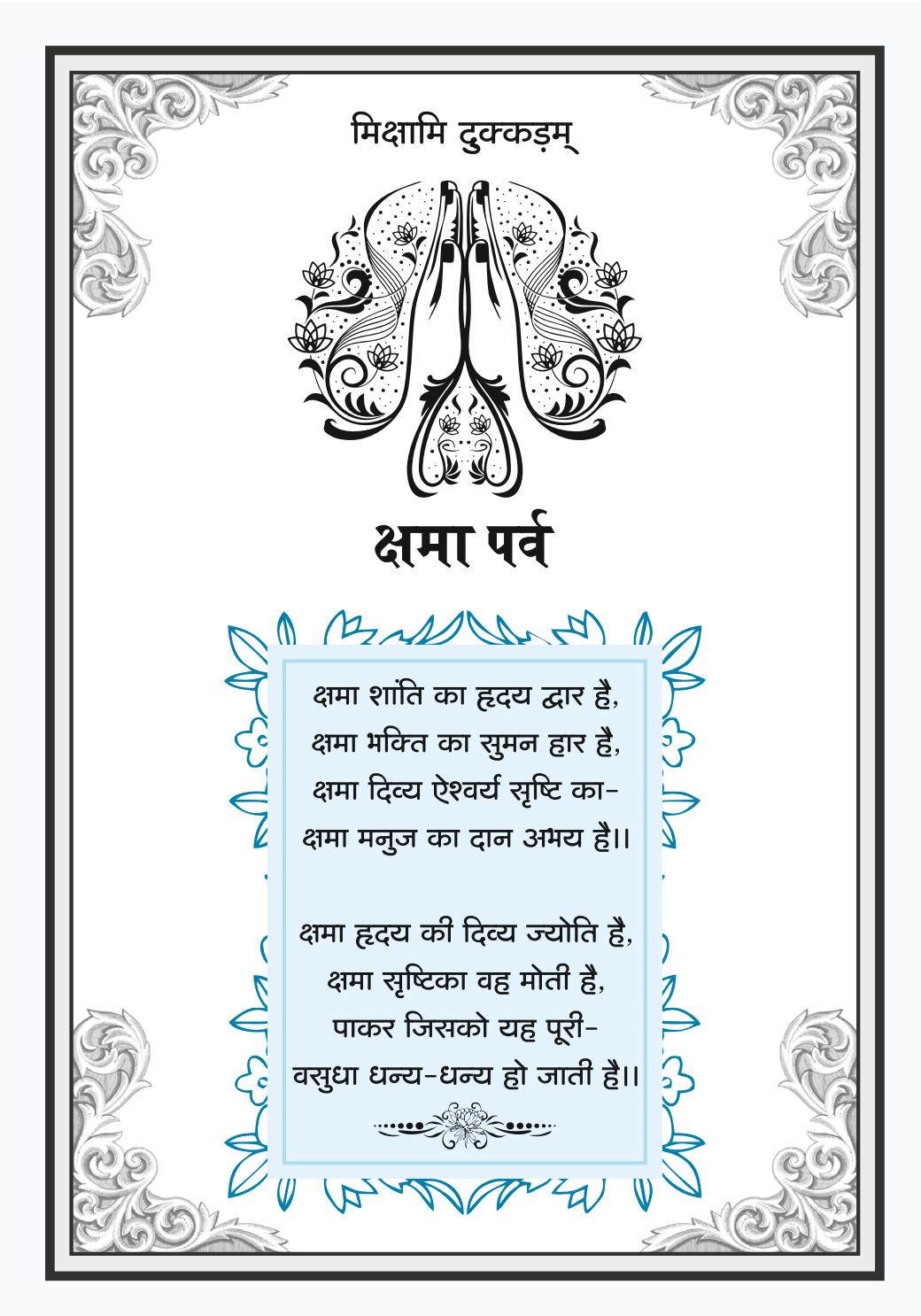
उद्बोधन

आंखों के होते भी आंखों को,
बन्द किए चलते अज्ञानी।
आगे-पीछे खुली आंख से,
देख-देख चलते हैं ज्ञानी॥

आत्मा में ही परमात्मा का,
अनुपम है ज्योतिर्मय स्थान।
जागो, उठो, स्वयं को पाओ,
यह है वीर प्रभु का ज्ञान॥

आज बीज है, तुच्छ, क्षुद्र है,
कल होगा वह वृक्ष महान्।
आज मनुज है अधम अपावन,
कल होगा वह जिन भगवान॥

This issue of Shri Amar Bharti can be downloaded
from our website- www.veerayatan.org



चिन्तामणि - स्तोत्र

[किंकरपूर स्तोत्र]

ॐ भगवन्त चिन्तामणि, पाश्वं प्रभु जिनराय।
नमो-नमो तुम नाम से, रोग शोक मिट जाय॥

स्तोत्र महिमा :-

जैन पद्धति साहित्य में स्तोत्र का एक अपना दिव्य और भव्य रूप है। स्तु धातु से बना यह शब्द स्तुति अर्थ को प्रकट करता है जिसमें परमात्मा की दिव्य विभूति, रूप, सौन्दर्य, श्रेष्ठता आदि का हृदयग्राही कथन होता है। ग्यारह श्लोकों के इस अनुपम स्तोत्र में पुरुषादानीय पाश्वनाथ को चिन्तामणि रत्न की उपमा देकर चमत्कार पैदा किया है। श्री चिन्तामणि पाश्वनाथ स्तोत्र बहुत प्रभावकारी चमत्कारी स्तोत्र है, मन्त्रगर्भित स्तोत्र है। प्रातः सायं शुद्धभाव पूर्वक इसका पाठ करने से तथा इसके बीजमन्त्र के जाप से कष्ट सारे दूर होकर आनन्द की प्राप्ति होती है। केवल भौतिक ही नहीं, आध्यात्मिक आनन्द की भी प्राप्ति होती है।

किं कर्पूर-मयं सुधारसमयं, किं चन्द्रोचिर्मयम्,
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारुण्य केलीमयम्।
विश्वानन्दमयं महोदयमयं, शोभामयं चिन्मयम्,
शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपते भूयाद् भवालम्बनम्॥1॥

शब्दार्थ :-

जिनपते= हे जिन-नाथ! **वपुः**= आपका यह शरीर **किम् कर्पूरमयं**= क्या कर्पूर (कपूर) से बना हुआ है? **सुधारसमयं**= क्या अमृतरस युक्त है? **किम् चन्द्रोचिर्मयम्**= क्या चन्द्रकिरणों से निर्मित है? **किं लावण्यमयं**= क्या सुन्दरता के सार से परिपूर्ण है? **क्या महामणिमयम्**= रत्नों की प्रभा से बना है? **क्या कारुण्य केलिमयम्**= करुणा की भावाभिव्यक्ति से निर्मित हुआ है या **विश्वानन्दमयम्**= सम्पूर्ण विश्व का जो आनन्द है उन आनन्द परमाणुओं के सार से आपका शरीर निर्मित है? **महोदयमयं**= कैसा शान्तिसम्पन्न है! **चिन्मयम्**= कैसा चैतन्यमय है! **शुक्लध्यानमयं**= कैसा शुक्लध्यानमय है! **भवालम्बनं**= यह मेरे लिए संसार में आलम्बन रूप! **भूयात्**= होवे!

भावार्थ:-

भगवान पार्श्वनाथ का शरीर अत्यन्त सुन्दर और दिव्य था। उनका शरीर संसार के प्राणियों के लिए आलम्बन रूप है।

कैसा दिव्य है आपका शरीर? कर्पूर से भी अधिक पावन, सुधा से भी अधिक अमृतपूर्ण, चन्द्रकान्त मणि से भी अधिक शीतल और प्रभामय, महामणि से भी अधिक लावण्य सम्पन्न मानो करुणा का सार संग्रह हो। विश्व के समस्त प्राणियों के आनन्द दाता, मंगल और सुख के प्रदाता है। ज्योतिर्मय है, सुखमय है, साक्षात् शुक्लध्यान स्वरूप है।

श्री पार्श्वनाथ प्रभु का कर्पूर के समान श्वेत उज्ज्वल और सुगन्धवाला, अमृत के समान आनन्ददायक, चन्द्रकिरण के समान शीतल, अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त, महामूल्यवान मणि के सदृश आभावाला अतीव करुणाशाली, संसार को आनन्द देनेवाला, सर्व शोभा सम्पन्न, शुद्ध चैतन्य रूप शुक्लध्यान स्वरूप यह शरीर इस संसार में मेरे लिए आश्रय देनेवाला होवे।



मनुष्य का मन जैसा विचार करता है और जैसा संकल्प करता है वैसा बनता है। मनुष्य के मन में जो संकल्प और विकल्प प्रतिक्षण उठते हैं, उसका मुख्य कारण उसके पूर्व-संस्कार ही होते हैं। वस्तुतः मनुष्य का मन एक प्रकार का कैमरा है, जो वस्तु उसके सामने आती है उसे वह पकड़ लेता है। मन का खुद का कोई आकर नहीं होता। जैसे जल का कोई अपना आकार निश्चित नहीं होता। जैसा पात्र होता है उसी आकर का जल हो जाता है। ग्लास में डालोगे तो ग्लास के आकर का, घड़े में भरोगे तो घड़े के आकार का। मनुष्य के मन की भी यही स्थिति है। जैसे वह सुनता है, जो देखता है, जो भी इन्द्रियों द्वारा गहण करता है तदनुसार उसका मन बन जाता है।

शुभ विचार करता है तो मनुष्य का मन शुभ बनता है और अशुभ विचार करता है तो मन अशुभ बन जाता है। अच्छा बनना या

खराब बनना मनुष्य के खुद के हाथ में है। भक्ति और उपासना के समय मन प्रभुमय कैसे बन जाता है? क्योंकि उस समय मन प्रभु के सम्बन्ध में विचार करता रहता है।

सबसे बड़ी समस्या मनुष्य के साथ यह है कि वह जीता है वर्तमान में, श्वास लेता है वर्तमान में परन्तु विचार करता है भूतकाल का या भविष्यकाल का। न अतीत का अन्त है न भविष्यकाल की सीमा। तब बताओ, शान्ति मिले तो कैसे मिले? मनुष्य का मन घड़ी के लोलक की तरह गतिमान है। वह इस किनारे से उस किनारे तथा उस किनारे से इस किनारे भटकता रहता है। कभी स्थिर होता ही नहीं, मध्य में रुकता ही नहीं।

वस्तुतः: मन की स्थिरता की बात ही मिथ्या है। मन कभी स्थिर हो नहीं सकता। मन को स्थिर करने के आजतक जितने प्रयत्न हुए हैं वे सारे निष्फल सिद्ध हुए हैं। मेरे विचार से

मन को स्थिर करने की अपेक्षा उसे पवित्र और निर्मल बनाना चाहिए। गन्दा और सड़ा पानी स्थिर भी हो तो उसका क्या मतलब? नदी का निर्मल प्रवाह बहता रहता है, स्थिर नहीं होता तो क्या वह लाभप्रद नहीं होता? तालाब का गंदा, सड़ा जल नहीं चाहिए। चाहिए गंगा का बहता निर्मल जल। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। मन की गंदगी साफ करो, उसे स्वच्छ, निर्मल और पवित्र बनाओ। बस फिर सबकुछ ठीक है। मन का धर्म/स्वभाव ही चिन्तन है। चिन्तन के बिना स्थिर हुए निष्क्रिय मन का क्या अर्थ? व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को अपने अभ्युदय के लिये सक्रिय मन की ही अपेक्षा है। मानव ने आज तक भौतिक या आध्यात्मिक समृद्धि के रूप में जो कुछ प्राप्त किया है, धरती और आकाश के बीच उसने जो एक भव्य सृष्टि खड़ी की है, वह मात्र



मानव के गतिशील मन की ही देन है, मन के चिन्तनशीलता की ही देन है। विकसित और सक्रिय मन न होता तो क्या मनुष्य इतना विकास कर पाता? पशुजगत ने इतना विकास क्यों नहीं किया? क्योंकि उसके पास सक्रिय विकसित मन नहीं है।

चिन्तनशील मन ही विकास की सीढ़ियाँ चढ़ सकता है। इसलिए मन को स्थिर मत बनाओ। अगर कुछ बनाना हो तो उसे निर्मल बनाओ, पवित्र बनाओ। जब मनुष्य का मन पवित्र और शुद्ध बन जाता है तब शांति और समाधि स्वतः ही आ जाती है। हमारी धर्मसाधना का लक्ष्य भी यही है।

कई लोग पूछते हैं, प्रायः सबका यह प्रश्न होता है कि मन शान्त क्यों नहीं रहता, मन स्थिर क्यों नहीं रहता? तब मैं कहता हूँ कि भाई मेरे! मन को स्थिर नहीं, निर्मल बनाओ।

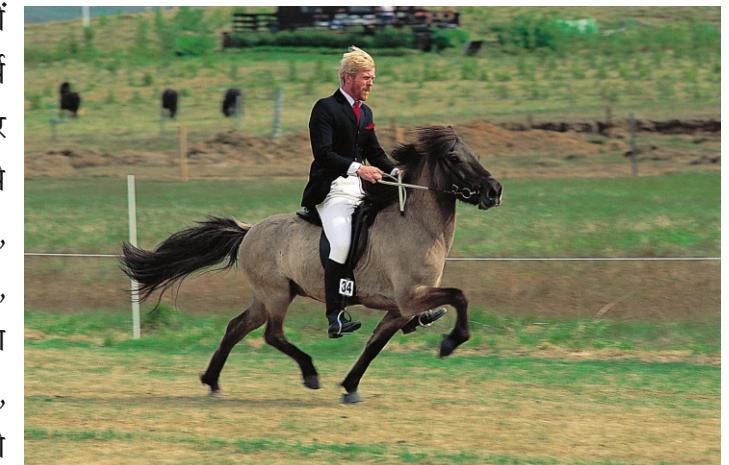
मन में ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, दम्भ की जो आग जल रही है उसे बुझाओ। उस आग में सारे सद्गुण भस्म हो रहे हैं। प्रेम-स्नेह, सद्भाव, क्षमा और मैत्री की गंगा जब मन में प्रवाहित होगी तब मन में भड़कता दावानल समाप्त होगा। तब मन शीतल और शान्त होगा। ऐसे निर्माणकारी विशुद्ध मन की ही अपेक्षा है। जन जीवन की सुख समृद्धि हेतु ऐसा मन धरती पर साक्षात् स्वर्ग उतार देता है। अच्छा

मन मरने के बाद तो स्वर्ग देता ही है किन्तु जीते जी भी स्वर्ग अर्पण करता है।

मन को अश्व कहा है सुदीर्घ और शीघ्र यात्रा हेतु अश्व जरुरी होता है, परन्तु कैसा अश्व? क्या अडियल टट्टु से यात्रा हो सकेगी? नहीं टट्टु नहीं किन्तु हवा से बात करता तेज तरार घोड़ा चाहिए। अगर ऐसे तेज चंचल घोड़े से सवार नीचे गिर जाय तो इसमें घोड़े का दोष नहीं, दोष सवार का है कि उसने घोड़े को साधा नहीं। घुड़ सवारी की कला सीखी नहीं। न स्वयं को साधा, न घोड़े को। घोड़ा अगर तेज है चंचल है, गतिशील है तो वही वस्तुतः अश्व है। अन्यथा गधा ले लो। फिर अश्व की अपेक्षा क्यों करते हो? मन भी अश्व है उसे तो चंचल, गतिशील और सक्रिय होना ही चाहिए। गतिशील मन ही चिन्तन की चमक पैदा करता है। गुपचुप, सुनमुन पड़ा मन चमक पैदा नहीं कर सकता। तेज गति से ही चमक पैदा होती है। मन को भी दौड़ने दो, तभी उसमें से प्रकाश की किरणें फुटेंगी। उस प्रकाश कि जो सूर्य के प्रकाश को भी फीका कर दे। उस महाप्रकाश की ही ये हजारों किरणें हैं- परिवार, समाज, राष्ट्र, धर्म, लोक, परलोक, आत्मा, परमात्मा आदि। जो मन के प्रकाश की, चिन्तन की किरणें न होती तो

आज हमारा क्या अस्तित्व होता? मन से ही मनुष्य, मनुष्य है। 'मननात् मनुष्यः' जिस मनु को मानवजाति के पुरस्कर्ता, नेता कहते हैं वह मनु, 'मन' ही है। इसीलिए कहा है- 'मनुर्भव' हे मानव तु मन बन, मननशील बन। मनन के बिना नारक, पशु और कीट बन सकता है पर मनुष्य नहीं बन सकता। मनुष्य ही मनन-चिन्तन पूर्वक कार्य सम्पादन कर सकता है।

मन की एकाग्रता का यह अर्थ नहीं कि मन को निष्क्रिय कर दिया जाय। मन की एकाग्रता का अर्थ है कि एक लक्ष्य पर केन्द्रित होकर उसपर चिन्तन करना, तत्त्व की गहराई में प्रवेश करना। इधर-उधर बिखरती चिन्तन शक्ति को केन्द्रित करके तीव्रता और शीघ्रता के साथ वस्तु के वास्तविक मर्म और रहस्य को प्राप्त करना, यही है एकाग्रता। इसमें चिन्तन को अधिक सक्रिय बनाना होता है, गतिशील बनाना होता है। हाँ, वह गतिशीलता एक दिशा में होती



है। पर है तो गतिशीलता ही, गतिहीनता तो नहीं है। भगवान महावीर ने कहा है कि चेतना को अशुभ से शुभ बनाओ। चेतना एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय नहीं रह सकती। वह तो प्रतिक्षण परिवर्तित होती पर्याय के रूप में सतत प्रवाहमान अनन्त धारा है।

कर्म को पवित्र बनाओ, उसे जनहित में लगाओ। कर्म के रूप को बदला जा सकता है, किन्तु कर्म को छोड़ा नहीं जा सकता। कर्म तो हर क्षण होता रहता है, कभी बाहर में तो कभी अन्दर में। अपेक्षा है कर्म को पवित्र बनाने की, छोड़ने की नहीं, निष्क्रिय बन जाने की नहीं। जो मन को निष्क्रिय बनाने की बात करते हैं वे असंभव को संभव बनाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि दीपक तो जले लेकिन प्रकाश न हो। क्या यह हो सकता है?

मन को बेकार नहीं करना है। उससे काम लेना है। वह मुफ्त में नहीं मिलता है। उसकी प्राप्ति के लिए बड़ी साधना करनी होती

है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय से संज्ञी (मनवाला) होने तक इस जीवन को बड़ी लम्बी यात्रा करनी पड़ती हैं जिसे इतनी मुश्किलियों के बाद पाया हो उस मन को निष्क्रिय और जड़ बना देना कहाँ की बुद्धिमानी है? कुछ न सोचना, मन को शून्य बना देना, पत्थर बना देना गलत बात है। अगर चिन्तन शून्य जड़ता ही साधना का आदर्श हो तो फिर जड़ पत्थर ही बड़े साधक हैं। उसे कोई विकल्प नहीं होता, उसे कुछ सोचना विचारणा नहीं होता। तो क्या वे निर्विकल्प हैं? नहीं उसे निर्विकल्प नहीं कहा जाता।

मन की निर्विकल्पता चाहिए लेकिन वह अशुभ की, शुभ की नहीं। प्यास बुझाने के लिए जल अपेक्षित है। परन्तु वह जल अस्वच्छ नहीं, स्वच्छ चाहिए। मन भी ऐसा ही स्वच्छ चाहिए। स्वच्छ मन अभिशाप नहीं, वरदान है। अध्यर्थना है कि उस वरदान से धरती का कोई भी मानव कभी भी वर्चित न रहे।



- आचार्य चन्दना

बचपन में मैंने एक स्वप्न देखा था। एक बहुत बड़ा मनुष्य लेटा हुआ है। उसके लम्बे-लम्बे हाथ और पैर दूर तक फैले हुए हैं। आँखे हैं, लेकिन बहुत छोटी-छोटी, वे भी बन्द। मैं उसके कानों के पास जाकर कह रही हूँ- “उठो-उठो”। फिर मैंने उसे धक्के भी मारे कि वह जाग जाय। परन्तु मेरी आवाज और मेरे धक्के उसे मच्छर की हरकत से लग रहे थे। थोड़ा-सा हिलता था और फिर पूर्ववत् गहरी नींद में सो जाता था। मैंने सोचा मुझ अकेली से नहीं जग रहा है तो किसी की मदद ले लूँ। अतः इधर-उधर देखती हूँ तो एक ओर कुछ ही दूरी पर भीड़ दिखाई दी। उन्हें बुलाना चाहा लेकिन मेरी आवाज नहीं निकल रही थी। इसी व्याकुलता में मैं जाग उठी।

लम्बे समय तक चिन्तन करती रही। तब एक फलितार्थ पाया कि यह मनुष्य की चेतना है जो घोर निद्रा में सोई पड़ी है। विशेषतः नारी समाज की घनी बेहोशी का अनुभव हुआ। नारी-शक्ति की यह बेहोशी

ऐसी गहरी नींद में है कि सहस्राब्दियों से बस सोई पड़ी है। नींद टूटती ही नहीं है उसकी। मानो आत्मसात् हो गई है। एकाकार हो गई है। इस जड़ता और बेहोशी को उसने अपना शृंगार मान लिया है। इसी को वह अपना गौरव जानती है और मानती है।

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता” जैसे पुष्पित शब्दों में पुरुष जाति द्वारा सम्मान जो कि अर्थहीन है, केवल शाब्दिक प्रमाण-पत्रों का अलंकार है। यह भार बनकर चिरकाल से स्त्री जाति को दबाता, कुचलता आ रहा है। इसका सही मूल्यांकन नहीं हो सका है।

आज की इस प्रगतिशील वैज्ञानिक सदी में भी भारतीय नारी की जो दुरवस्था है, आज भी स्त्रियों के साथ पशुओं की तरह बर्बरतापूर्ण व्यवहार होता है, शारीरिक, मानसिक यातनाएँ दी जाती हैं। प्रश्न होता है कि क्या यही विकास है? क्या यही नारीमुक्ति का युग है? दहेज प्रथा के कारण अनेक सुयोग्य लड़कियों के जीवन अंधकारपूर्ण हैं,

कितनी कुण्ठाओं एवं प्रताड़नाओं से भरा जीवन व्यतीत करना होता है उन्हें। कितना मानसिक त्रास दिया जाता है उन्हें?

स्त्री और पुरुष मानव समाज के दो महत्वपूर्ण अभिन्न अंग हैं। जहाँ उनकी अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, वहाँ उनकी मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। अतः प्रश्न है कि समान रूप से प्राप्त मानवीय अधिकारों से एक वर्ग वर्चित क्यों है? शोषित और पीड़ित क्यों है? क्यों वह दो नम्बर का जीवन जीने के लिए बाध्य हो? इतिहास साक्षी है, स्त्री के साहस, शौर्य, शस्त्र कुशलता का। फिर भी वह हीन क्यों?

मैं पूछना चाहती हूँ देश की महिलाओं से कि क्या उन्हें अपने भूले बिसरे व्यक्तित्व की याद आ सकती है? क्या उनमें जागरण आ सकता है? क्या चिर-निद्रा टूट सकती है? मैं हजारों महिलाओं से मिली हूँ, इस सम्बन्ध में उनसे बात की हूँ, जागरण संदेश उनतक पहुँचाने का प्रयत्न करती रही हूँ। याद दिलाती रही हूँ कि तुम गृहलक्ष्मी हो, ऐश्वर्य की देवी हो। और देवी ही देवत्व को जन्म दे सकती है। कहा गया है— “गृहिणी गृहमुच्यते” वस्तुतः घर तो स्त्री ही है। स्त्री के बिना घर, घर नहीं कहलाता। वही घर की लक्ष्मी होती है। पूरे परिवार की धूरा होती है।

जैसे जल और अग्नि दो तत्त्व हैं। इसमें कौन छोटा और कौन बड़ा? किसके गुण कम

और किसके गुण अधिक? तुलना नहीं हो सकती। ऐसे ही स्त्री और पुरुष की तुलना करना व्यर्थ है। कौन बड़ा और कौन छोटा? शारीरिक शक्ति ही जीवन में सबकुछ नहीं होती। जैसे अग्नि के गुण अलग हैं जल के अलग। दोनों का महत्व है। स्त्री के गुण अलग हैं पुरुष के अलग। दोनों का अपने-अपने स्थान पर महत्व है।

यह प्रकृति का सहज सत्य मनुष्य कब समझ पायेगा? सदियों से वह भ्रान्त मनोवृत्ति में रहता चला आ रहा है। अतः यह भ्रान्त मनोवृत्ति केवल सामाजिक जीवन में ही नहीं बल्कि धार्मिक क्षेत्रों में भी इसी प्रकार भ्रान्त धारणाएँ और मान्यताएँ घुसी हुई हैं। मान्यता है कि स्त्री न तीर्थकर हो सकती है न आचार्य तथा उपाध्याय। उसे आहारक लब्धि और मनःपर्यवज्ञान नहीं हो सकता। वह चतुर्दशपूर्व का अध्ययन भी नहीं कर सकती। वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र में चाहे जितनी योग्य क्यों न हो दीक्षास्थविर, महत्तरा साध्वी भी क्यों न हो, मात्र स्त्री होने के कारण उसे एक दिन के दीक्षित अल्पज्ञ साधु को भी वन्दन करना होगा। श्रमणसंघ, श्रावकसंघ आदि पुरुष प्रधान नाम ही धार्मिक संगठनों के होंगे। साधिव्याँ तथा श्राविकाएँ गौण रूप से उनके अन्तर्गत हो जाती हैं, संख्या की दृष्टि से या साधना के अनुपात से वे श्रेष्ठ और अधिक क्यों न हो।

इस तरह का यह पुरुष प्रधान लोकाचार

धर्माचार में भी सवार है। इसी लोकाचार के चक्र में एक जैन सम्प्रदाय ने तो स्त्री को श्रमणदीक्षा और केवलज्ञान के अधिकार से भी वर्चित रखा।

पुरुषों का वर्चस्व है, चूंकि उनके हाथ में चिरागत पद है, प्रतिष्ठा है, सत्ता है इसीलिए उनका मिथ्या अहंकार विषधर नाग की तरह कुण्डली मारे बैठा है आज तक।

और, यह सत्य है कि जो शक्तिशाली होगा, वह अपने अधिकार के अन्तर्गत सबकुछ करना चाहेगा। पुरुषवर्ग की निन्दा नहीं कर रही हूँ। मैं तो सुषुप्त नारी जाति को जागरण का संदेश देना चाहती हूँ। नारी जाति की जो अवहेलना हो रही है, उससे बचने के लिए आह्वान कर रही हूँ। नारी जाति की व्यथा ने मेरे सुदृढ़ मनस्तत्त्व को कई बार विकल्पित किया है, द्रवित किया है। अन्याय तो अन्याय ही है, वह किसी पर भी हो। प्रबुद्ध व्यक्ति द्रवित हुए बिना कैसे रह सकता है?

आज सारी दुनिया में नारीमुक्ति की लहर है। शिक्षा ने स्वतंत्र चिन्तन का मार्ग प्रशस्त किया है। अतः नारी जाति भी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठी है। सभी क्षेत्रों में विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर होती जा रही है। किन्तु भारत की नारी आज भी पुरुषों के अमानवीय व्यवहार से प्रताड़ित है और उनकी आये दिन की घृणित प्रताड़नाओं की शिकार है। जहाँ-तहाँ कई बार उनके साथ पशु से भी अधिक दुर्व्यवहार किया जाता है। यह समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण है।

आज के समय में विकास की दिशा में जो रंगीन मानचित्र तैयार किये जा रहे हैं, उसमें आर्थिक-क्रान्ति को प्रधानता दी जा रही है, जो महत्वपूर्ण है किन्तु जब तक प्रजातन्त्र में विश्वास करनेवाले देश के समग्र नागरिकों की बिना किसी भेदभाव के समानता की विशुद्ध भावना जागृत नहीं होती, तबतक प्रगति के मार्ग पर चलनेवाले स्त्री-पुरुष रूप दो पटरियों की



यात्रा विकास के सही मार्ग पर कैसे होगी? पेरेलिसिस के बाद जैसे शरीर असन्तुलित रहता है, इसी तरह समाज की स्थिति रही तो विकास की दिशा के सारे रंगीन स्वप्न दिवास्वप्न ही बनकर रह जायेंगे।

विचित्र बात एक यह भी है कि कुछ स्त्रियाँ स्वयं ही नहीं चाहती कि उनका समान दर्जा हो। दासी बनकर रहने में ही वे अपना गौरव समझती हैं। इसी में अपनी मर्यादा की सुरक्षा और कर्तव्य-धर्म देखती हैं। और इसी भावना के प्रवाह में बरबस बहती स्त्रियाँ भी स्त्रियों को त्रास देती हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि उद्दण्डता, उच्छृंखलता अथवा पश्चिम की अंधी दौड़ का मैं आंख मूंदकर समर्थन कर रही हूँ। भारतीय संस्कृति की गुणवत्ता की रक्षा आवश्यक है। मेरे कुछ तीखे शब्दों का केवल इतना ही अर्थ है कि नारी जाति को साहसपूर्ण दृढ़ता के साथ अपने उचित सम्मान की सुरक्षा के लिए जागना



है। अपने योग्य अधिकारों की सभी-भाँति रक्षा करनी है। उसे दो नम्बर का जीवन नहीं जीना है। पुरुषों के अन्यायपूर्ण दमन-चक्र एवं यन्त्रणाओं से मुक्ति प्राप्त करनी है। समाज रुपी रथ के दोनों चक्रों-पहियों को एक समान मजबूत होना है, और एक समान गति से, एक साथ गतिशील होना है।

जैसे प्रकृति का हर उपादान सहजता से एक-दूसरे के अस्तित्व के साथ अपना अस्तित्व बनाये रखता है, एक-दूसरे का सहयोगी बनकर रहता है। स्त्री और पुरुष प्रकृति से अलग नहीं है। सब परस्पर मित्र बनकर रहे। क्यों कोई किसी को पीड़ा एवं कुण्ठा के कुहासे में म्लान करें? यही नवजागरण का संदेश है। इसके साथ अपने पूर्व स्वप्न का स्मरण दिलाते हुए कहना चाहुंगी कि तन्द्रा में पड़े हुए विशाल समाज के जागरण के लिए प्रत्येक महिला को जागना है। उनके जागरण में ही समाज का जागरण है।



३क्षा बन्धन

– उपाध्याय अमरमुनि

क्षितिज पर उदित होनेवाला आज का सूर्य सांस्कृतिक पर्व रक्षाबन्धन की सूचना दे रहा है। जो हजारों वर्षों से भारत की जन चेतना को जगाता चला आ रहा है। यह सांस्कृतिक पर्व है। सामाजिक चेतना का पर्व है और सबसे बढ़कर मानवता की सर्वोच्च गरिमा का पर्व है।

हम सभी एक ही भारतमाता की सन्तान हैं। हम सबके एक-दूसरे के प्रति दायित्व है और एक-दूसरे की आपत्ति में, संकट में एक-दूसरे की सहायता करना एवं एक-दूसरे के लिए अपने आपको समर्पित करना, इसी मंगल सुरक्षा दान का संकल्प दिवस है यह रक्षाबन्धन पर्व।

जीवन में जो भी समस्या है वह व्यक्तिगत नहीं है। एक व्यक्ति की समस्या सारे राष्ट्र की समस्या है। और राष्ट्र की समस्या व्यक्ति की समस्या है। इस प्रकार की अद्भुत चेतना का निर्माता रहा है भारत।

भारत के महामनीषियों, उपदेष्टाओं एवं तीर्थकरों ने जन-जन तक एक ही उपदेश

पहुँचाया है कि एक-दूसरे की रक्षा करो। एक-दूसरे के जीवन के लिए अपने आपको समर्पित करो, सहयोग दो।

तीर्थकर महावीर से उनके शिष्य सुधर्मा ने पूछा- आपकी यात्रा का उद्देश्य क्या है? भगवान ने कहा था-

स्व जग जीव रक्खण दयदृठयाए

एकमात्र उद्देश्य है- दया अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के जीवों की रक्षा। सब प्राणी एक-दूसरे की रक्षा करे, एक-दूसरे का हित-चिन्तन करें, एक-दूसरे की समस्या का समाधान करें। अगर किसी के समक्ष कांटे पड़े हैं, तो उन कांटों को हटाये और जीवन के सामने फूलों का बाग लगायें। और इस प्रकार जीवन का आनन्द सुख एवं शान्ति सब मिलकर उपभोग करें। इसी महान आदर्श को हम प्राचीनकाल के शास्त्रों एवं ग्रन्थों में देखते हैं। ऋग्वेद की वाणी है-

“संगच्छध्वं संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्”

तुम सब एक साथ चलो, कदम से कदम मिलाकर चलो, यह नहीं कि एक का

मुंह पूरब की ओर तो दूसरे का पश्चिम की ओर। साथ चलने से ही राष्ट्र की गरिमा वर्धमान होगी।

संवदध्वं- एक साथ बोलो, यह नहीं कि कोई कुछ बोल रहा है तो कोई और ही कुछ। आज शासनतन्त्र में भारत वर्ष की अनेक पार्टियाँ हैं, अनेकानेक दल हैं, भिन्न-भिन्न वक्तव्य है, मालूम होता है, किसी को किसी से कोई मतलब नहीं। हर व्यक्ति दूसरे पर आक्षेप कर रहा है, मन में दुर्भावना रखकर कटाक्ष कर रहा है। सुनोपसुन्द न्याय से आपस में लड़े जा रहे हैं। उन्हें पता नहीं है कि इस प्रकार के जीवन का क्या अर्थ है? ऐसी स्थिति में यह रक्षाबन्धन हमें एकता की प्रेरणा देता है। सब मिलकर बोलो, स्वर में स्वर मिलाकर बोलो।

वर्तमान में यद्यपि हमने इसका सीमित अर्थ लगा लिया है परन्तु मधुर सम्बन्ध तो व्यापकता चाहते हैं। भाई एवं बहन का एक सहज सम्बन्ध है। यह पर्व मधुर स्नेह सम्बन्ध का प्रतीक है। इतिहास में इसके अनेक अद्भुत रूप देखे जा सकते हैं। जहाँ मुस्लिम बहनों की हिन्दू राजाओं ने रक्षा की है और इसी प्रकार हिन्दू कन्याओं की मुस्लिम शासकों ने अपने प्राणों की बलि देकर भी रक्षा की है। एक मां की सन्तान भी नहीं है ऐसी बहनों के लिए, केवल मुंहबोली बहनों के लिए अपने जीवन अर्पण किये हैं।

आचार्य कालेलकर, कह रहे थे कि

यह राखी का बन्धन इतना मजबूत है कि भारत की एक हिन्दु कन्या समृद्ध परिवार की बेटी, अमेरिका में पढ़ने के लिए गई। सशंक थे माता-पिता एवं स्नेही स्वजन सब। वह स्वयं भी सशंक थी कि वहाँ की सभ्यता, वहाँ की संस्कृति, वहाँ का उन्मुक्त वातावरण, कैसे होगी सुरक्षा? किन्तु वह रक्षासूत्र लेकर गई। और जिनके साथ उसे रहना था, पढ़ना था, उन मित्रों को उसने राखी बांधी और जब पूछा गया कि यह क्या है? तो उसने रक्षाबन्धन का सांस्कृतिक महत्व बतलाया और कहा कि अब तुम मेरे भाई हो। भारतवर्ष की यह महान् सांस्कृतिक परंपरा है। और उस बहन की रक्षा के लिए वहाँ के युवक वर्ग ने पूर्ण सहयोग दिया, बहन की तरह सम्मान रखा। इस प्रकार जो वातावरण विपरीत दिशा में जा सकता था, उसे इस रक्षा सूत्र ने अनुकूल दिशा में परिवर्तित कर दिया।

अभिप्राय यह है कि इस उदात्त पर्व ने भारत की सीमाएँ लांघकर सुदूर सागर पार मधुर सुजनता स्थापित की है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह रक्षा भाई-बहन तक ही सीमित है। रक्षा का अर्थ है सब भाई-भाई हैं, सब बहने-बहने हैं। जहाँ रक्षा का प्रश्न है, वहाँ न कोई जाति बीच में आती है न कोई धर्म। और नहीं किसी प्रकार की प्रान्तीयता ही बीच में आती है। वहाँ तो बस सब एक है। सबकी रक्षा करनी है। यही रक्षा बन्धन का अर्थ है।



- आचार्य चन्दना

जीव और कर्म के सम्बन्ध के विषय में जो भिन्न-भिन्न विचार धाराएँ हैं वे मुख्तः तीन प्रकार की हैं— नीरक्षीरवत्=दूध पानी की तरह एकमेक। कर्मपुद्गल और आत्मप्रदेश दूध में मिले पानी की तरह एकमेक हो जाते हैं।

दूसरे प्रकार की विचारधारा है— अग्नि लौहपिण्डवत्। जैसे लौह गोले को अग्नि में डालने पर उसके कण-कण में अग्नि प्रवेश कर जाती है उसी प्रकार आत्मा के कण-कण में अर्थात् आत्मा के असंख्य प्रदेशों में अनन्तानन्त कर्मवर्गणा के कर्मदलिक परिव्याप्त हो जाते हैं।

तीसरी है सर्पकेंचुलीवत्— सर्प के शरीर पर उसी के आकार की एक परत चढ़ जाती है। उसी प्रकार आत्मा पर कर्म की परत चढ़ जाती है। इस तिसरी विचारधारा के प्रवर्तक जैन परंपरा के ही एक विद्रोही

विचारक गोष्ठमाहिल है। लेकिन जैन धर्मदर्शन उसे मान्य नहीं करता।

कर्मभोग की प्रक्रिया

संसार में जितने जीव है उनके किये जानेवाले कर्म या तो शुभ होते हैं या अशुभ। शुभ का फल अच्छा और अशुभ कर्मों का फल बुरा होता है। प्रश्न है— जीव बुरे कर्म तो करता है किन्तु बुरे कर्म का बुरा फल वह नहीं चाहता। और कर्म स्वयं जड़ है, चेतन नहीं, तो वह फल कैसे दे सकता है? क्योंकि चैतन्य की प्रेरणा के बिना फल प्रदान करना असंभव है। अगर कर्मकर्ता स्वयं ही उसका फल भोगता हो तो वह सुख ही भोगेगा। दुःख तो भोगना वह बिल्कुल नहीं चाहेगा। इसके उत्तर में कर्मवादी अन्य दार्शनिकों ने बुरे कर्मों के दुःखफल देनेवाले ईश्वर को अवतरित किया।

किन्तु जैनदार्शनिकों ने ऐसी ईश्वरीय

सत्ता का स्वीकार नहीं किया। तब प्रश्न है कि जैनदर्शन में कर्मफल भोगने की क्या व्यवस्था है? स्पष्ट समाधान है जैन दर्शन का, कि चेतनात्मा के संसर्ग से अचेतन कर्म में एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि जिससे कर्म ही स्वयं शुभाशुभ कर्मफल को नियत समय पर प्रकट कर देते हैं। वे जड़ कर्म चेतना के बिना संसर्ग के फल नहीं दे सकते। फल देने की शक्ति चेतना की शक्ति के द्वारा ही कर्म में उत्पन्न होती है। मिर्च पत्थर पर पीसी जाय तो पत्थर को तीखापन नहीं देती पर जीभ को तीखापन देती है क्योंकि जीभ चेतन आत्मा से सम्बद्ध है। चेतन जीभ पर जैसे ही मिर्च आती है तो वह अपने तीखेपण का फल दे देती है। उस तीखेपण का स्वाद कराने के लिए वहाँ ईश्वर को आने की आवश्यकता नहीं है।

ये शुभाशुभ कर्म रहते कहाँ हैं?

जैन दर्शन के अनुसार कर्मवर्गण के पुद्गल परमाणु सम्पूर्ण लोक में परिव्याप्त है।



उन परमाणुओं में स्वयं में कोई शुभत्व या अशुभत्व नहीं होता। जीव के शुभ या अशुभ भाव ही कर्म पुद्गलों को शुभ या अशुभ बनाते हैं। जीव के परिणाम या विचार ही कर्मों की शुभता या अशुभता के कारण है। जीव का परिणाम ही उन्हें शुभाशुभ बना देता है। कर्म के आश्रयभूत जीव का यह विभाव भाव होता है कि जीव जैसे शुभाशुभ परिणाम से कर्म ग्रहण करता है उसी रूप में कर्म परिणत हो जाते हैं। पुद्गल शुभ से अशुभ तथा अशुभ से शुभ रूप में परिणत होते रहते हैं।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग की विचित्रता एवं प्रदेशों का अल्प-बहुत्व भी जीव कर्म ग्रहण के समय ही कर लेता है। जैसे सर्प और गाय को दूध दिया जाय तो गाय का वह दूध-दूध ही के रूप में परिणत होगा लेकिन सर्प का वह दूध विष के रूप में परिणत होता है। एक ही समय में एक जैसा खाद और पानी नींबू के पेड़ में खट्टे रस में

और आम के पेड़ में मीठे रस में परिणत होता है। इसी प्रकार जीव के ग्रहण किये हुए कर्म पुग्दल भी शुभ, अशुभ रूप में परिणत होते हैं। एक ही पुद्गल वर्गण में विभिन्नता का होना कर्म सिद्धान्त से बाधित नहीं है।

कर्मसम्बन्ध कब से और कैसे?
आत्मा चेतन है और कर्म जड़, तो चेतन का सम्बन्ध जड़ से

कैसे हुआ और कब हुआ? वस्तुतः यह सम्बन्ध तो अनादि है इसकी शुरुआत किसी दर्शन में नहीं बताई गई है। शास्त्रकार कहते हैं जैसे सोने के साथ मिट्टी कब से है नहीं मालुम है किसी को। स्वर्णकार मिट्टी को अलग करके सोने को शुद्ध बनाता है। इसी तरह कर्म सन्तति का आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध है। इसी तरह

अनादिकालीन कर्मरज को दूर करके आत्मा को शुद्ध तथा निर्मल बनाया जा सकता है।

जीव सदा क्रियाशील रहता है। मन, वचन और काया का व्यापार निरन्तर होता है। जिससे हर समय जीव कर्मबन्ध करता रहता है। इस प्रकार कर्म विशेष की दृष्टि से कर्म का सम्बन्ध सादी है किन्तु संतति की दृष्टि से जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से है।

पुराने कर्म प्रतिक्षण क्षय होते रहते हैं और नये कर्म बंधते रहते हैं। कर्मबन्ध के पांच कारण बताये गये हैं— 1. मिथ्यात्व, 2. अविरति, 3. प्रमाद, 4. कषाय और 5. योग। संक्षेप में दो ही कारण हैं कषाय और योग। क्योंकि कषाय में ही मिथ्यात्व अविरति और प्रमाद अन्तर्भूत हैं और कर्मबन्ध के चार प्रकार हैं— प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेशबन्ध। उनमें प्रकृतिबन्ध और



प्रदेशबन्ध का कारण योग है तथा स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध का कारण कषाय है। जैसे मकड़ी अपनी ही प्रवृत्ति से जाल बुनती है और खुद के बने जाल में खुद फँसती है। जीव भी अपने ही राग-द्वेष रूप प्रवृत्ति से स्वयं ही स्वयं को कर्म पुद्गलों के जाल में फँसा लेता है। जैसे कोई अपने शरीर पर तेल लगाले और धूल में लोट लगाये तो उसके शरीर पर धूल चिपट जाती है, उसी प्रकार राग और द्वेष के परिणामों से जीव कर्मपुद्गलों को ग्रहण करता है। कषायभाव के कारण कर्म परमाणु आत्मा के साथ चिपक जाते हैं। यही बन्ध है।

अन्य दर्शनों में कर्मबन्ध का कारण माया, अविद्या, वासना, अज्ञान बताया है। यद्यपि शब्दभेद और प्रक्रिया भेद है परन्तु मूल में अधिक भेद नहीं है। न्यायदर्शन एवं वैशेषिक दर्शन में मिथ्याज्ञान को, योगदर्शन में प्रकृति और पुरुष के संयोग को, वेदान्त दर्शन में

अविद्या तथा अज्ञान को और बौद्धदर्शन में वासना को कर्मबन्ध का कारण माना गया है।

भारतीय दर्शन में जैसे कर्मबन्ध और कर्मबन्ध के कारण माने गये हैं उसी प्रकार उन कर्मबन्धों से मुक्ति के साधन भी बताये हैं। मुक्ति, मोक्ष और निर्वाण मुख्यतः समान अर्थ में प्रयुक्त है। बन्धन से विपरीत दशा को ही मुक्ति एवं मोक्ष कहा है। यह ठीक है कि जीव के साथ कर्म का प्रतिक्षण बन्ध होता है और पुराने कर्म, फल देकर आत्मा से अलग हो जाते हैं। परन्तु इसका फलितार्थ यह नहीं कि आत्मा कभी भी कर्म से मुक्त होगा ही नहीं। जैसे बताया है पहले कि खान से निकले मिट्टी युक्त स्वर्ण को ताप आदि प्रक्रिया से मिट्टी मुक्त शुद्ध बनाया जाता है, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा अध्यात्म साधना से कर्ममुक्त हो जाता है।

जब आत्मा एकबार कर्ममुक्त हो

जाती है तब वह कभी भी पुनः कर्म से बंधती नहीं। क्योंकि कर्मबन्ध के जो कारण हैं वे पूर्णतः नष्ट हो गये हैं। जैसे बीज के जल जाने पर उसमें से अंकुर नहीं फूटता।

कैसे हो कर्मबन्ध से मुक्ति?

जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्षमार्ग बताया है। “ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः” भी कहा गया है। जहाँ सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हो वहाँ सम्यक् दर्शन अवश्य होता है। वह ज्ञान और चारित्र में अन्तर्निहित है।

मोक्ष के हेतु दो हैं- संवर और निर्जरा। बद्ध कर्मों से मुक्ति के लिए साधक संवर की साधना करता है जिससे नवीन कर्मों का आगमन रुक जाता है और निर्जरा की साधना से पूर्व संचित कर्मों को नष्ट करता है और अन्त में कर्मबन्धन से मुक्त होकर निर्वाण पा लेता है।



विज्ञान कहता है- यह ब्रह्माण्ड स्पन्दनों से, आन्दोलनों से भरा है। उसके किसी भी कोने में उठा छोटा-सा स्पन्दन भी भुवनव्यापी असर पैदा करता है। तालाब में फेंकी छोटी-सी कंकरी जैसे जल की कुण्डलियाँ पैदा करती हैं और वे कुण्डल समग्र तालाब में व्याप्त हो जाते हैं। वैसे इन स्पन्दनों के बारे में भी सच है।

हमारा अस्तित्व अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप में समग्र सृष्टि की अंतर्क्रिया (इन्टरेक्शन) के नाते जुड़ा हुआ है। समग्र चेतना एक-दूसरे से प्रभावित है। इस प्रकार अध्यात्म और विज्ञान एक बिन्दु पर आ गया है।

ब्रह्माण्ड (कास्मॉस) के इस दिव्यगुंजन में अहिंसा का अर्थ है सहयोग। हिंसा का अर्थ है व्यवधान। ब्रह्माण्ड के दिव्य

गुंजन में मेरे द्वारा होता व्यवधान कम से कम हो यह भाव ही अहिंसा है। कबीर कहते हैं- दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों कि त्यों धर दिनी चदरियां....

किसी जीव को मार डालना, पीड़ा देना, शोषन करना, ठगना, लूटना, झूठ बोलना इन सब निमित्तों से दिव्य गुंजन बिखरता है। सृष्टि की लयबद्धता टूटती है। पीड़ा, चोरी, असत्य शोषण स्थूल भी होते हैं और सूक्ष्म भी।

एक चींटी फर्श पर चल रही है, उस पर हमारा पैर न पड़ जाय इसकी सावधानी रखना, वस्तुतः उस दिव्य गुंजन के प्रति आदर है, यही मनुष्य के रूप में हमारा कर्तव्य है। इसी में चींटी की चेतना का स्वीकार है, और चींटी की चेतना के निमित्त से विश्वव्यापक चेतना का अभिवादन है। और यही अहिंसा है।

भगवान महावीर ने ऐसी स्थूल और सूक्ष्म, व्यापक और गहन, भौतिक और मानसिक अभिवादन की महिमा ढाई हजार वर्ष पूर्व बताई थी। अहिंसा को उन्होंने परम धर्म कहा।

आज भी जैन श्रमण-श्रमणी का प्रयत्न होता है कि उनके द्वारा ब्रह्माण्ड में कम से कम व्यवधान हो, सृष्टि की लयबद्धता टूटे नहीं। हर जीव अपने जीवन को सुख पूर्वक

वहन करे। हर जीव सुखपूर्वक रहें। प्रदूषण से, युद्ध से, परिग्रह से प्रकृति की लयबद्धता बिखरती है। सच्चा जैन सावधानी पूर्वक अपना जीवन जीता है। यही जैन धर्म की मौलिकता है।

अहिंसा का अर्थ है परस्पर सहयोग। अहिंसा का अर्थ है सबके साथ मैत्री। अहिंसा का अर्थ है जीओ और जीने दो।

झाड़ू



ग्रेजुएशन पूरा होने के बाद भी लम्बे समय तक जब उसे नौकरी नहीं मिली तो आखिर सुपर मार्केट में एक सहायक स्टोर कीपर की नौकरी उसने मंजूर कर ली। पहले दिन सूट-बूट पहनकर जब पहुँचा तो मैनेजर ने बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाया और कहा— यांगमेन! आज इस स्टोर में तुम्हारा पहला दिन है इसलिए शुरुआत सबसे पहले इसकी साफ-सफाई से करते हैं। आज तुम स्टोर का परिचय करो और इसका सबसे अच्छा तरीका है कि इसकी सफाई करो। यह कहकर मैनेजर ने एक लम्बी डण्डीवाला झाड़ू उसके हाथ में थमाना चाहा।

झाड़ू को देखते हुए एक कदम पीछे हटकर बड़े मुश्किल से बोल पाया.... पर मैं ग्रेजुएट हूँ। झाड़ू कैसे उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे।

ओह! सौरी! मैं तो भूल गया। मैनेजर बोला। तुम्हें नहीं मालूम होगा झाड़ू कैसे लगाते हैं। आओ, मैं बताता हूँ— झाड़ू कैसे निकाला जाता है। और मैनेजर ने बड़े प्रेम से, बड़े करीने से पूरे स्टोर में झाड़ू लगाया और कचरा उठाकर डस्टबीन में डाला। तथा झाड़ू को जगह पर रखकर प्रसन्नता पूर्वक बोला, लो, हो गई सफाई। बड़ा सिम्पल है झाड़ू लगाना। लेकिन सफाई होने के बाद कितनी प्रसन्नता मिलती है! इसे तुमने भी महसूस किया होगा। इसी प्रसन्नता के लिए सफाई आवश्यक है। यही पहला कदम है, पहली सीढ़ी है फिर तो कदम हर कदम आगे बढ़ते रहोगे। बस लग जाओ काम में।



विवेक जगा आवरण हटा

-उपाध्याय अमरमुनि

अनन्त तीर्थकरों की शाश्वतवाणी है कि हर आत्मा अनन्त है। अनन्त ज्ञान की धारक है। अनन्त प्रकाश से परिपूर्ण है। इसी अनन्त सत्य की अनुभूति के लिए निकल पड़े वर्धमान महावीर। अनन्त सत्य की प्राप्ति ने सोयी हुई ज्ञानचेतना को जिसने जगाया, एक प्रकाश जागृत किया। वह था- तीर्थकर महावीर।

हर आत्मा अपने अन्दर अनादिकाल से प्रकाश सम्पन्न है। ज्योति अन्दर दबी पड़ी है। प्रकाश अन्दर है फिर भी आत्मा ठोकरें खाता है। क्योंकि ज्योतिपर आवरण पड़ा है। जबतक दीपक पर आवरण है। तबतक घर में ही और घर के लोग ही ठोकरें खाते हैं। प्रकाश है फिर भी ठोकरें खा रहे हैं। आवश्यकता है आवरण हटाने की।

भगवान महावीर ने विलक्षण शब्द का प्रयोग किया है— “ज्ञानावरण”। अज्ञान शब्द

का प्रयोग नहीं किया। क्योंकि ज्ञान का अभाव नहीं है आत्मा में। अज्ञान का सीधा अर्थ अभाव है, इन्कार है। अतः वह भिखारी बना घुमता है, मांगता है कि कहीं से उसे ज्ञान मिले।

कबीर कहते हैं, अनन्त आनन्द का स्त्रोत अन्दर बह रहा है और वह बाहर खोज रहा है।

‘पानी में मीन पियासी,
मोहे सुन-सुन आवत हांसी...’

मछली प्यासी है, एक-एक बूँद के लिए तरस रही है। अपार सागर में, अनन्त सागर में मछली प्यासी है। अपार सागर में, अनन्त सागर में मछली प्यासी है। पगली मछली पानी में रहकर एकेक बूँद के लिए हाय-हाय कर रही है। हंसी आती है, उस पर कि उसके चारों ओर पानी है, सागर है। मनों नहीं टनों पानी उसके अगल-बगल, ऊपर-नीचे है। और वह पानी-पानी पुकार रही है। हाय मैं प्यासी मर

रही हूँ। कोई पानी दे दो मुझे। कौन है वह नादान मछली? कौन है सागर? स्वयं ही है वह मछली और स्वयं के भीतर ही है, वह ज्ञान का सागर। सुख का सागर कहीं बाहर नहीं है। स्वयं में ही है वह अनन्त प्रकाश। आंखें अगर बन्द हैं तो रात है। प्रकृति की रात का तो समाधान है कि दीपक जला लो। लेकिन भीतर की रात का क्या समाधान?

भगवान महावीर कहते हैं, एक ही समाधान है कि आवरण हटा दो। नया कुछ नहीं करना है। नया दीप क्या जलाओगे वह तो स्वयं प्रज्वलित है भीतर अनन्त काल से। लेकिन आवरण आया है। शक्ति तो है लेकिन अभिव्यक्ति नहीं है। तुम्हारा घट खाली नहीं है। तुम तो अमृत से परिपूर्ण हो। अमृत सागर लहरा रहा है तुम्हारे भीतर। तुम उस तेज से शून्य नहीं हो जो 'सूर्यकोटि समप्रभ' है। करोड़ों सूर्यों का प्रकाश जगमगा रहा है तुम्हारे अन्दर। सूर्य को भी तुम ही प्रकाशित करते हो, क्योंकि सूर्य के अस्तित्व का बोध तुम्हारी अपनी रोशनी करती है। तुम्हारी अपनी आंख करती है। आंख तुम्हारी है, प्रकाश तुम्हारा है। कौन तुम्हें प्रकाश देगा? और कौन दे सकता है? क्योंकि भगवान महावीर ने कहा- एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में हस्तान्तरित नहीं होता। एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में संक्रान्त नहीं किया जा सकता। हर द्रव्य स्वतन्त्र है। हर आत्मा अपनी ईकाई लिए हुए है। हर आत्मा

अनन्त ज्ञान के साथ स्वतन्त्र है।
दिल्ली से आग्रा की बिहार यात्रा में मैं जब वृन्दावन पहुँचा तो वहाँ गुरुकुल में विद्वानों से मिलने गया। आचार्य विश्वेश्वर जी बड़े विनम्र और उदार मुझे देखकर झटपट उठ खड़े हुए। खूब प्रसन्नता के क्षणों में बातचीत हुई, गहन चर्चा हुई। जब दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों के बीच प्रवचन हुआ तो मैंने उन विद्यार्थियों से पूछा, "आप यहाँ क्यों आये?" विद्यार्थियों का उत्तर था, "ज्ञान प्राप्त करने आये हैं। मैंने पुनः पूछा, 'क्या ज्ञान गुरुकुल के भण्डारे में भरा रखा है?' एक विद्यार्थी बोला, आचार्य से ज्ञान पाने आये हैं। फिर प्रश्न उठाया मैंने, "अगर आचार्य के पास से आप ज्ञान लेंगे तो उनके ज्ञान में कटौती होगी न? वे देंगे, आप लेंगे तो वे खाली होंगे और आप भरेंगे। तो सब गड़बड़ा गये। तब मैंने अर्थ खोलकर गहराई से बताया, 'देखो एक व्यक्ति सोया हो और दूसरा उसे आवाज लगाकर जगाये, तो वह जाग जाता है। जैसे जगानेवाला अपना जागरण उस व्यक्ति में नहीं डालता। जागरण तो उस व्यक्ति की सुप्तावस्था के नीचे छुपा हुआ था। चेतना सोई हुई थी, ध्वनि से जाग गई।'

बस यही बात है। ज्ञान तो तुम्हारा अपना है। क्योंकि आत्मा का लक्षण ही 'ज्ञान' है। ज्ञान का मूल आधार आत्मा है। 'ज्ञानाधिकरणमात्मा' जहाँ ज्ञान है वहाँ आत्मा है और जहाँ आत्मा है वहाँ ज्ञान है। जहाँ ज्ञान

नहीं, वहाँ आत्मा नहीं तथा जहाँ आत्मा नहीं वहाँ ज्ञान नहीं। तुम आत्मा हो, तुम्हारी आत्मा ज्ञान से शून्य नहीं है। कोई आत्मा ज्ञान से शून्य नहीं होती। भगवान महावीर कहते हैं, आवरण चाहे कितना ही गहरा हो, फिर भी चेतना का छोटा-सा हिस्सा ज्ञानवान रहता है।

"अक्खरस्स अनन्त भागो निच्युग्धाडिओ भवडा"

एक अक्षर के अनन्त हिस्से कर ले तो वह अनन्तवां हिस्सा जो है इतना सूक्ष्म अंश सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की आत्मा का ज्ञान से जगमगाता रहता है। अन्यथा चेतन, चेतन न रहकर जड़ हो जायेगा।

इस दृष्टि से महाप्रभु महावीर की वाणी केवल जगाने के लिए है। महावीर कहते हैं दिया हुआ सब बाहर का होता है। ज्ञान देने-लेने की बात में नहीं है। ज्ञान तो भीतर है,

वह बाहर कहीं नहीं है। अतः न ज्ञान उधार दिया जाता है, न खरीदा जाता है और न भीख में दिया जा सकता है। गुरु तो औंधे पात्र को सीधा कर देता है। बन्द आंखों को खोल देता है। इसीलिए उन्हें चक्खुदयाण कहते हैं। मार्ग देते हैं, अतः मगगदयाण कहते हैं। देखना स्वयं को है, चलना स्वयं को है। महावीर परम स्वतन्त्रता की घोषणा करते हैं। वे गुलामी नहीं देते, गुलामी का हमारा भ्रम तोड़ देते हैं। उनका परम सूत्र है- "अप्पा सो परमप्पा।"

हर आत्मा परमात्मा है। द्वार पर किरणें दस्तक दे रही हैं और तुम द्वार बन्द कर अन्धेरे का रोना रोते हो। आंखें खोलो बस प्रकाश ही प्रकाश है। मुंह खोलो और बस पानी ही पानी है। आवरण हट जाय तो बस आनन्द ही आनन्द है।

पनीली रात

-रेखा सिन्हा

बड़ी पनीली रात हुई है,
सड़कों पर बरसात हुई है,
सर्द हवाओं की नमी से,
लाचारों की हार हुई है।

नीड़ नहीं ठहनी पर कोई,
पत्तों में दुबकी है गौरैया,
कुछ शाख पर बैठे उल्लू,
कैसी उनकी रात हुई है।

पत्तों से टपक रही हैं बूंदें,
जाने कितनी बात हुई है,
फुटपाथ पर सोयी मुनिया,
बंटे कंबल पर मार हुई है।

कहीं हार पर जीत बड़ी
बड़े अलाव पर बात हुई है,
झुकी कमर की अभिलाषा,
सर्दी में सौगात मिली है।



JAINA कन्वेशन में वीरायतन की उपस्थिति

JAINA (Jain Association In North America) का 22वां अधिवेशन इस वर्ष 30 जून से 3 जुलाई तक फ्लोरिडा (USA) में आयोजित हुआ जिसमें पूज्य तार्द मां के आशीर्वाद से साध्वीश्री शिलापीजी, साध्वीश्री संघमित्रा जी एवं श्री जय जैन द्वारा वीरायतन की ओर से प्रभावशाली प्रतिनिधित्व किया गया।

कन्वेशन की पूर्व संध्या पर साध्वीश्री शिलापी जी एवं साध्वीश्री संघमित्रा जी ने JAINA के सदस्यों को खूब प्रेम से सुंदर उपहार दिए। सभी ने अत्यंत श्रद्धा और भाव से भेंट स्वीकार करते हुए कहा, "हम सब तार्द मां की अनुपस्थिति को अनुभव कर रहे हैं लेकिन हम बहुत प्रसव हैं कि उन्होंने इतने प्रेम से अपना आशीर्वाद हम सब के लिए भेजा है और हमें पूर्ण विश्वास है कि उनके आशीर्वाद से कन्वेशन सफल होगा। हम सब उनके अच्छे स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की प्रार्थना करते हैं।"

अधिवेशन का शुभारंभ साध्वीश्री संघमित्रा जी के मंगलाचरण एवं सुमधुर गीत द्वारा हुआ जो JAINA के अधिवेशन के थीम- Maximise your Potential - the Jain way पर आधारित था। पूज्य तार्द मां ने अपने संदेश द्वारा

श्रोताओं को संबोधित करते हुए कहा- "मैं स्वयं इस कन्वेशन में उपस्थित नहीं हो सकी हूं लेकिन मेरा आशीर्वाद, शुभकामनाएं इस कार्यक्रम की सफलता के लिए हैं। JAINA एक ऐसा प्लेटफार्म है जो इतने बड़े स्तर पर जैन समाज को संगठित करने का कार्य वर्षों से सफलतापूर्वक कर रहा है, इसके लिए उन्हें साधुवाद है, अभिनंदन है और मैं प्रार्थना करती हूं की JAINA भविष्य में भी इसी प्रकार यह सुंदर कार्य करता रहे।"

दोपहर को प्रबुद्ध वक्ताओं की एक विचार गोष्ठी में साध्वी श्री शिलापीजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विभिन्न विषयों पर विचार विमर्श हुआ जैसे कि जैनों की संख्या पूरे विश्व में कैसे कम होती जा रही है? अमेरिका में जैन युवा जो अपने धर्म से विमुख हो रहे हैं उसके लिए क्या किया जा सकता है? विश्व स्तर पर जो समस्याएं हैं, उनका जैन धर्म के मूल्यों द्वारा समाधान किस प्रकार किया जा सकता है? इस प्रकार के प्रश्नों पर पूज्य तार्द मां के विचारों को साध्वीश्री शिलापीजी ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

शाम 4 से 5 साध्वी श्री शिलापीजी ने सुंदर वक्तव्य द्वारा सभा को संबोधित किया। अपने शरीर,



मन, वचन, चेतन एवं अवचेतन बुद्धि को प्रशिक्षित करके अपनी कार्य क्षमता को किस प्रकार विकसित किया जा सकता है, इस विषय पर उन्होंने बहुत सराहनीय प्रस्तुति दी। साथ ही साथ वीरायतन की गतिविधियों के बारे में भी श्रोताओं को अवगत कराया।

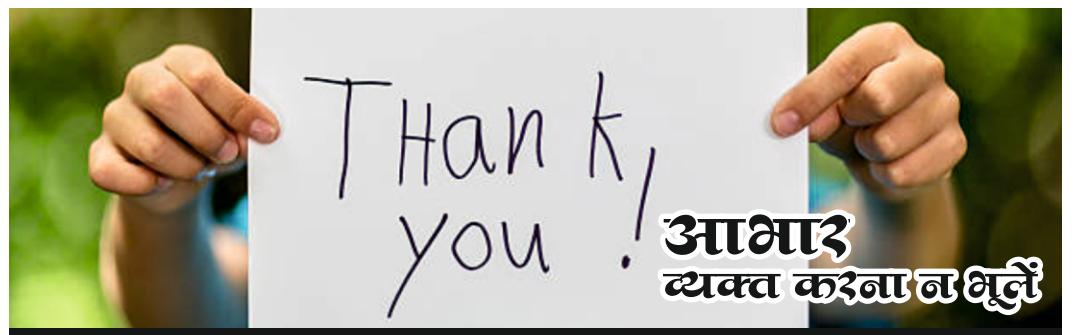
अगले दिन पूज्य तार्द मां के सेवा कार्यों का वीडियो दिखाया गया और एक बार पुनः साध्वी संघमित्रा जी ने अपने भजन द्वारा दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया। कन्वेशन के अन्य छोटे-छोटे कार्यक्रमों में भी वीरायतन की प्रभावशाली उपस्थिति रही। श्री जय जैन ने समय-समय पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से वीरायतन की गतिविधियों के विषय में जानकारी प्रदान की जिसे देखकर और सुनकर काफी लोग प्रभावित हुए एवं उन्होंने वीरायतन आने का आश्वासन भी दिया।

एक विशेष मीटिंग में वीरायतन USA और JAINA के सभी सदस्य एकत्रित हुए और JAINA के पूर्व सदस्य श्री दिलीप भाई शाह ने पूज्य तार्द मां के चरणों में निवेदन किया कि समय आ गया है कि वीरायतन की प्रखर साधियों की उपस्थिति अमेरिका में सक्रिय एवं अनवरत रूप से हो। इसके

लिए जैना जो हाउसिंग प्रोजेक्ट कर रहा है उसमें भी पूज्य तार्द मां का विज्ञन मिले, आशीर्वाद मिले ऐसी विनती की गई। साथ ही 2 वर्ष पश्चात शिकागो के कन्वेशन में वीरायतन द्वारा समोसरण प्रस्तुत करने का भाव भी व्यक्त किया गया।

कन्वेशन के अंतिम दिन साध्वी संघमित्रा जी के मांगलिक ने कार्यक्रम के समापन को दिशा दी। संपूर्ण कार्यक्रम में वीरायतन की उपस्थिति एवं प्रस्तुति की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। आने वाले समय में पूज्य तार्द मां के विचार और उनका विज्ञन बहुत उपयोगी होंगे, ऐसा भाव व्यक्त किया गया। वीरायतन USA के विस्तार पर भी चर्चा की गई।

साध्वीश्री शिलापीजी एवं साध्वी श्री संघमित्रा जी ने JAINA कन्वेशन के आयोजनकर्ताओं एवं वीरायतन USA के सभी सदस्यों के प्रति धन्यवाद प्रकट किया एवं इतने भव्य कार्यक्रम के आयोजन के लिए अभिनंदन व्यक्त किया। इस प्रकार यह कन्वेशन अत्यंत सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।



धन्यवाद शब्द कहना हमारी आदत में सम्मिलित हो गया है, परंतु आभार, कृतज्ञता, एहसान आदि ऐसे खूबसूरत शब्द हैं, जिनके अर्थ गहरे होते हैं। इसका अनुभव हम अपने रोजमरा के जीवन में करते हैं। इन शब्दों को, इनसे जुड़ी भावनाओं को जब हम अपने जीवन में, अपने कार्यों में उतारते हैं तब ये न सिर्फ हमारे व्यक्तित्व को गौरव प्रदान करते हैं, बल्कि दूसरों को भी खुशी प्रदान करते हैं।

आभार एक ऐसी भावना है, जो जरूरत के वक्त सहायता मिलने के बाद लोगों के बीच उत्पन्न होती है। कृतज्ञता का अनुभव विशेष रूप से तब होता है, जब सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति को सहायता मूल्यवान लगती है। विनम्रतापूर्ण व्यवहार से एहसानमंद होने का एहसास पैदा होता है।

यह दूसरों के प्रति अपनाए गए हमारे दृष्टिकोण से व्यक्त होता है और हमारे व्यवहार में झलकता है। एहसान का मतलब किसी अच्छाई का एहसान चुकाना नहीं है; क्योंकि एहसान सिर्फ लेन-देन नहीं है।

एहसानमंद होने का एहसास हमें आपसी सहयोग और एक-दूसरें के प्रति समझ की कला सिखाता है। एहसानमंद होने के एहसास में ईमानदारी होनी चाहिए।

सीधे-सरल शब्दों में 'धन्यवाद' कहकर भी इस भावना को दरसाया जा सकता है। अक्सर लोग अपने बहुत नजदीकी लोगों, जैसे जीवनसाथी, संबंधी, दोस्त आदि के प्रति कृतज्ञता जताना भूल जाते हैं। एक सच्चे और ईमानदार इन्सान का चरित्र और व्यक्तित्व बनाने वाले गुणों में एहसानमंद या कृतज्ञ होने के एहसास का दरजा सबसे ऊँचा है, लेकिन ऐसा होने में सबसे बड़ी रुकावट अहंकार पैदा करता है।

एहसानमंद होने का नजरिया जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को हमेशा के लिए बदल देता है। एहसानमंद होने के एहसास और विनम्रता के गुणों को यदि हम अपना लेते हैं तो हमारा व्यवहार अपने आप ही सही होने लगता है।

आंतरिक प्रगति को अवरुद्ध करने

वाली प्रवृत्तियों में एक प्रमुख प्रवृत्ति यह है कि अच्छी चीजों का श्रेय व्यक्ति खुद लेना चाहता है और बुरी चीजों के लिए दूसरों पर दोषारोपण करता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि व्यक्ति अपनी नाकामी एवं असफलता से बचने की कोशिश करता रहता है। वह हमेशा परिस्थितियों को जिम्मेदार ठहराता है और अपने लक्ष्य से दूर भागता रहता है।

हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि जब हम कामयाबी के लिए अपने आप को बधाई का पात्र मानते हैं तो फिर नाकामी की स्थिति में ऐसा क्यों नहीं करते? हमें अच्छी चीजों का श्रेय दूसरों को देना चाहिए और उनकी खामियों की जिम्मेदारी खुद लेनी चाहिए। अपनी तरक्की में दूसरों का योगदान स्वीकारना ही बड़प्पन है। ऐसा तब होता है, जब हम अपनी स्थिति से संतुष्ट हों। हम ऐसा सोचना शुरू कर देते हैं कि हमें किसी की मदद की जरूरत नहीं तो यह हमारी दृढ़ता को दर्शाता है। यह हमारा नकारात्मक नजरिया है, जो सकारात्मक चीजों को आने से रोकता है। कुछ लोग दूसरों की तुलना में अधिक कृतज्ञता महसूस करते हैं।

आध्यात्मिकता और आभार के बीच का संबंध हाल ही में हुए लोकप्रिय अध्ययन के आधार पर दिखा। इसमें पाया गया कि आध्यात्मिकता एक व्यक्ति के आभारी होने की क्षमता को बढ़ाने में सक्षम है, इसलिए वे

व्यक्ति जो गतिविधियों में संलग्न रहते हैं, वे जीवन के सभी क्षेत्रों में ज्यादा प्रभावी तरीके से आभार प्रकट कर पाते हैं।

आभार को सभी धर्मों में समान रूप से देखा गया है। सभी धर्मों में भगवान के प्रति आभार प्रकट करके पूजा करना आम बात है। इसलिए आभार की अवधारणा सभी धार्मिक, ग्रन्थों, शिक्षाओं और परंपराओं में व्याप्त है। इस कारण यह आम भावनाओं में से एक है, जिसे सभी धर्म अपने अनुयायियों में उत्पन्न करना और बनाए रखना चाहते हैं। इसे सार्वभौमिक धार्मिक भावना माना जाता है।

अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि जो लोग अधिक आभारी होते हैं, उनका आत्मिक आनंद का स्तर उच्च होता है। आभारी लोग ज्यादा खुश, कम उदास, कम थके हुए और जीवन व सामाजिक रिश्तों से अधिक संतुष्ट होते हैं। आभारी लोगों में अपने वातावरण, व्यक्तिगत विकास, जीवन के उद्देश्य और आत्मस्वीकृति के प्रति भी नियंत्रण का स्तर उच्च होता है।

आभारी लोगों के पास जीवन में आनेवाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए अधिक सकारात्मक तरीके होते हैं। उन्हें अन्य लोगों से समर्थन मिलने की संभावना अधिक होती है। आभारी लोगों के पास सामना करने के लिए सकारात्मक रणनीति भी होती है। समस्या से बचने का प्रयास करने, खुद को दोष देने या

लक्ष्य से हटने की संभावना कम होती है।

आभारी लोगों को बेहतर नींद आती है। ऐसा इसलिए होता है; क्योंकि वे सोने से पहले नकरात्मक विचारों के बारे में कम और सकारात्मक विचारों के बारे में ज्यादा सोचते हैं। ऐसा कहा गया है कि आभार का किसी भी चरित्र विशेष के मानसिक स्वास्थ्य के साथ मजबूत संबंध होता है।

कई अध्ययनों से पता चलता है कि आभारी लोगों में खुशी का स्तर अधिक और अवसाद व तानाव का स्तर कम करने की क्षमता होती है; क्योंकि भावनाएँ व्यक्ति के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि आभार भी विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण हो सकता है। आभार और कल्याण के मध्य एक अद्वितीय रिश्ता होता है।

एक बार उन लोगों को याद कीजिए, जिनका हमारे जीवन पर अच्छा असर पड़ा हो। ऐसे लोगों में हमारे माता-पिता, शिक्षक या कोई भी दूसरा व्यक्ति हो सकता है, जिसने हमारी सहायता करने के लिए भरपूर समय दिया हो। देखने में शायद ऐसा लगा हो कि उन्होंने केवल अपना कर्तव्य निभाया है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है, उन्होंने हमारे लिए अपनी इच्छा से अपने समय, श्रम, सम्पदा आदि का नियोजन किया है। उन्होंने हमारे प्रति प्रेम के कारण ऐसा किया, न कि धन्यवाद पाने के लिए।

किसी मोड़ पर जब व्यक्ति इस बात

को महसूस करता है कि उसकी जिन्दगी को संवारने में किसने कितनी मेहनत की, शायद उन्हें धन्यवाद देने के लिए अब भी देर नहीं हुई है। आभार ऋणग्रस्तता की तरह नहीं है; जबकि दोनों भावनाएँ मदद के बाद व्यक्ति की जाती हैं। ऋणग्रस्तता तब पैदा होती है, जब व्यक्ति मानने लगता है कि उसका दायित्व है कि उसे सहायता हेतु मिले मुआवजे से कुछ चुकाना भी है; जबकि आभार प्राप्तकर्ता को अपने संरक्षक की तलाश करने और उनके साथ अपने रिश्ते सुधारने के लिए प्रेरित करता है।

आभार प्रकट करना एक तरह से रिश्तों को सुदृढ़ करना है। एक प्रयोग में पाया गया कि आभूषण की दुकान में ग्राहकों को बुलाकर जब धन्यवाद दिया गया तो उनकी खरीद में 30 प्रतिशत तक की बुद्धि देखी गई। दूसरे अध्ययन में पाया गया कि एक रेस्टोरेंट के नियमित ग्राहक सर्वर को उस समय ज्यादा बड़ी टिप देते हैं, जब सर्वर उनके चेक पर 'धन्यवाद' लिखते हैं।

आभार प्रकट करना हमारी शालीनता, विनम्रता एवं निरहंकारिता का प्रतीक है। अतः हमारे लिए जिसने भी, जो भी, कभी भी, कुछ भी किया हो- उसका हमें अवश्य ही आभार व्यक्त करना चाहिए।

– 'अखण्ड ज्योति' से साभार



महापर्व पर्युषण पर्व की आराधना

अत्यन्त प्रसन्नता है कि तीर्थकर महावीर की समवसरण भूमि राजगृह में वीरायतन प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठापक एवं 'पद्मश्री' के राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी पूज्य ताई माँ इस वर्ष 2023 में वीरायतन राजगीर में पर्युषण पर्व की समाराधना साध्वीश्री विभाजी, साध्वीश्री श्रुतिजी, डॉ. साध्वी श्री सम्प्रज्ञाजी एवं साध्वीश्री दिव्याश्रीजी के साथ करेंगे।

आप सबको इस अमूल्य अवसर का लाभ उठाने हेतु सादर साग्रह आमन्त्रण है।

आचार्यश्री ताई माँ की आज्ञा से उनका साध्वी संघ विभिन्न स्थानों में पर्युषण पर्व की आराधना करेगा।

- | | |
|--|---------------------|
| • साध्वीश्री साधनाजी एवं साध्वीश्री संघमित्राजी | - मशकत। |
| • उपाध्यायश्री यशाजी महाराज एवं साध्वीश्री रोहिणी जी | - नैरोबी, अफ्रीका |
| • डॉ. साध्वीश्री चेतनाजी | - पालीताणा |
| • साध्वीश्री शिलापीजी एवं तपस्वी साध्वीश्री सुमेधाजी | - दुबई |
| • साध्वीश्री शाश्वतजी | - जमशेदपुर, टाटानगर |
| • साध्वीश्री मनस्वीजी एवं नवदीक्षित साध्वीश्री प्रणीतिश्रीजी | - जखनिया, कच्छ |



वीदायतन ने बिहार का परिवार पेय जावू

प्राचीन मगध की राजधानी और आज के बिहार नालन्दा की ऐतिहासिक नगरी राजगीर में अधिकमास का मलमास मेला लगा है। मान्यता है कि इस समय में यहाँ तेत्तीस करोड़ देवी-देवता आते हैं। एतदर्थ दूर-दूर से लोग राजगीर आते हैं और यहाँ के गर्मजल के झरणों में नहाकर स्वास्थ्य पाते हैं।

वस्तुतः यह भूमि तीर्थकरों की ज्ञानियों की, ऋषिमुनियों की भूमि है यहाँ बुद्ध, कृष्ण, महम्मद, ईसा और नानक भी आये हैं। यह धर्मों की संगम स्थली है। यहाँ भगवान महावीर के 14 चातुर्मास हुए हैं अतः इसी पंचमगिरि वैभारगिरि की तलहटी में आचार्य श्री चन्दनाश्रीजी ने 50 वर्ष पूर्व वीरायतन संस्थान संस्थापित किया है। जहाँ सेवा, शिक्षा, साधना के विविध आयामी अनेकानेक कार्य हो रहे हैं।

वीरायतन में अभी मलमास मेले के जितने लोग म्यूजियम देखने आते हैं उन्हें बिहार का प्रसिद्ध पेय सत्तू पिलाया जाता है। जिसमें हजारों लोग लाभ ले रहे हैं।

इस शुभकार्य में जय जैन बॉम्बे ने अपने प्रिय पुत्र कबीर के पंचम जन्मदिन के उपलक्ष में तथा भानुबेन मेहता अमेरिका और कृष्णा जैन एवं सत्संग महिला मण्डल गाजियाबाद ने भी अपना सहयोग प्रदान किया है।

संयुक्त परिवार की नजीर

‘सात पीढ़ियों से एक साथ रहता है कोलकाता का गुजराती परिवार’

सामाजिक ढांचा, ताना-बाना बिल्कुल बदल चुका है। समाज में अब बिल्कुल उलटी हवा बह रही है। परिवार टूट चुके हैं, बिखर चुके हैं। परिवार का मतलब ही बदल गया है। अब तो सिर्फ ‘हम दो, हमारे दो’ का चलन चल रहा है। बड़े-बुजुर्गों की उपेक्षा चरम पर है। इस तरह के संक्रमण के दौर से गुजर रहे समाज के किसी कोने से अगर खबर आती है कि किसी का परिवार अभी भी संयुक्त चल रहा है तो निश्चित रूप से अजरज होता है। बातावरण ही कुछ ऐसा बन गया है। चौंकानेवाली मगर सही खबर यह है कि आधुनिकता की आज की अंधी दौड़ में भी पारिवारिक मूल्य जिन्दा हैं। कोलकाता का एक गुजराती परिवार लगातार सात पीढ़ियों से संयुक्त रूप से चल रहा है। वर्तमान में परिवार

के 47 सदस्य हैं, लेकिन चुल्हा एक ही है। एक ही रसोई में खाना बनता है। और एक ही साथ परिवार के सभी जन मिल जुलकर व्यवसाय करते हैं। इतना ही नहीं, परिवार में आपसी प्रेम, सौहार्द, छोटे-बड़े का अदब लिहाज तथा अनुशासन देखने लायक है। इसका रहस्य सिर्फ और सिर्फ यह है कि समूचे परिवार को धर्म की लम्बी डोर ने एक साथ बांध रखा है। दक्षिण कोलकाता के बालीगंज सर्कुलर रोड (रिची रोड) में रहने वाले शाह परिवार का 120 साल से भी अधिक पुराना चाय का व्यवसाय है, जो कोलकाता से लेकर कोयम्बटूर और कोचीन तक फैला हुआ है।

‘दैनिक विश्वमित्र’ से बात करते हुए शाह परिवार की पांचवीं पीढ़ी की सदस्य श्रीमती संगीता खिलेन शाह बताती हैं कि वर्ष 1890 में इस परिवार के केशव सवचन्द्रजी शाह ने सबसे पहले आकर नौकरी की। कालान्तर में शिपिंग, जुट का व्यवसाय



हुआ। ब्लेड बनाने का कारखाना भी चलता रहा। चाय की ट्रेडिंग शुरू हुई, जो समयान्तर में बिस्तारित होती चली गयी। वर्तमान में शाह परिवार की टी प्रोसेसिंग-मैन्युफैक्चरिंग यूनिट कोयम्बटूर तथा कोचिन में संचालित है, जिनमें मुख्य रूप से टी बैग तैयार किये जाते हैं। ‘ट्राइस’ आपका टी ब्रांड है। कारखानों में तैयार होनेवाली चाय मुख्य रूप से अमेरिका, यूरोप के देशों तथा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को निर्यात की जाती है। इसके अतिरिक्त स्पाइस तथा ओलियो रेजिन की फैक्ट्री भी चल रही है। व्यापार में परिवार के सभी सदस्यों की बराबर-बराबर की भागीदारी है। सबकी जिम्मेदारियां अलग-अलग हैं, लेकिन फैसले सब मिल जुलकर लिये जाते हैं। इसके साथ ही शाह परिवार की शेयर ब्रोकिंग फर्म भी है। यह फर्म वित्तीय क्षेत्र की देश की मशहूर कंपनी मोतीलाल ओसबाल की कोलकाता फर्म देश के टॉप श्री फ्रेनचाइजी में सुमार है। रियल इस्टेट तथा प्लास्टिक मोलिंडिंग का भी व्यवसाय है।

श्रीमती खिलेन शाह और आपके पति श्री खिलेन शाह बताते हैं कि परिवार के सूत्रधार केशव सवचन्द्जी शाह के बाद परिवार की एकता-समरसता का नेतृत्व नगीन दास केशव शाह तथा जगमोहन दास केशव शाह ने संभाला। इन दोनों बरिष्ठजनों ने समूचे

परिवार को अपने कुशल नेतृत्व से नये आयाम तक पहुंचाया। वर्तमान में परिवार के सबसे बरिष्ठ श्री रमनजी शाह का मार्ग दर्शन मिल रहा है। श्रीमती खिलेन शाह कहती हैं कि सबके साथ रहने में एक अलग ही सुख है। परिवार की पूरी विशेषता के पीछे धार्मिक भावना काम कर रही है, जिसकी शुरूआत 100 साल से भी अधिक समय पहले हुई थी। आपका कहना है कि सभी सदस्य नियमित रूप से धार्मिक कार्यों में अनुरक्त रहते हैं। परिवार के मुखिया का कहना है कि घर की जिम्मेदारी से पहले मंदिर और धार्मिक अनुष्ठान में जाने की प्राथमिकता होनी चाहिए तथा पूजा-पाठ पर ध्यान होना चाहिए। धार्मिक भावना सिर्फ कहने-देखने की नहीं है, बल्कि उनके आचार-विचार और व्यवहार में भी झलकती है। परिवार के छोटे हों या बड़े, सभी को मार्ग दर्शन मिलता है। सामंजस्य स्थापित करने तथा समझौता कर जिंदगी की गाड़ी को आगे बढ़ाने के गुर भी सिखने को मिलते हैं। परिवार के लोग आपस में एक-दूसरे से चर्चाएं करते हैं, दुःख-दर्द बांटते हैं। सुखी और प्रसन्नचित रहते हैं।

“गुजरात के सौराष्ट्र के मांगरोल से शाह परिवार के केशव सवचंद जी शाह वर्ष 1890 में कोलकाता आए थे। उन्होंने परिवार को इस तरह एकता के सूत्र में

पिरोया कि अब तक उनकी परम्परा का पालन हो रहा है। सदस्यों के बीच आपसी भरोसे का एक तरह का रिवाज बन गया है। प्रेम, सौहार्द और अनुशासन भी अपने आप में एक मिसाल है।”

इस गौरवशाली परिवार की चौथी पीढ़ी के सदस्य सेठ श्री नगीनदास केशवजी शाह 70 के दशक में सम्पूर्ण कलकत्ता जैन संघ के अग्रगण्य तथा पुरानी परम्परा के संरक्षक के रूप में सर्वमान्य रहे। सन् 1971 में जब ‘पद्मश्री’ डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी पूज्य ताई मां का चातुर्मास कलकत्ता में था तो न

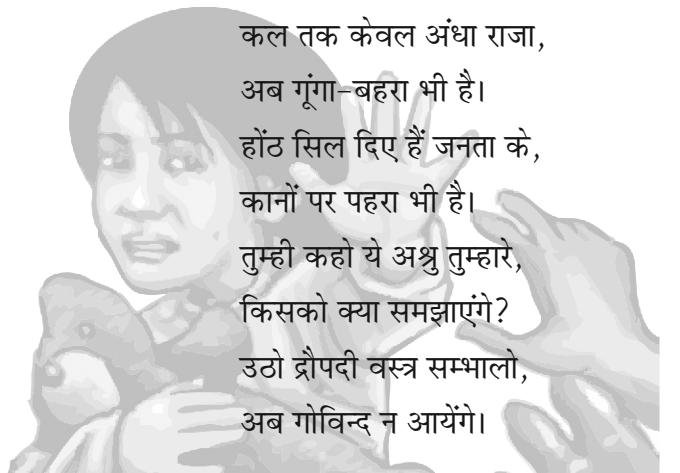
केवल श्री नगीनभाई शाह एवं सौ. श्री मंजुभाभी बल्कि उनके भाई और भाईयों का समन्वित परिवार, सब के सब पूज्य ताई मां के नये क्रान्तिकारी विचारों से पूर्णतः प्रभावित तथा श्रद्धान्वित हुए। और वीरातयन की नींव को सुदृढ़ करने का कार्य आजीवन करते रहे। आज भी उनका परिवार उनके पथ पर चलता हुआ पूज्य ताई मां के प्रति अत्यन्त श्रद्धान्वित है तथा तन-मन-धन से समर्पित है। श्री खिलेन शाह आज वीरायतन-बिहार संस्था के महामंत्री हैं।

उठो द्रौपदी वस्त्र सम्भालो, अब गोविन्द न आएंगे।

उठो द्रौपदी वस्त्र सम्भालो,
अब गोविन्द न आएंगे।
छोड़ो मेंहदी भुजा संभालो,
खुद ही अपना चौर बचा लो।
द्यूत बिछाए बैठे शकुनि,
मस्तक सब बिक जाएंगे।
उठो द्रौपदी वस्त्र सम्भालो,
अब गोविन्द न आएंगे।
कब तक आस लगाओगी तुम,
बिके हुए अखबारों से।
कैसी रक्षा मांग रही हो,
दुःशासन दरबारों से।

श्री अमर भारती

स्वयं जो लज्जाहीन पड़े हैं,
वे क्या लाज बचाएंगे।
उठो द्रौपदी वस्त्र सम्भालो,
अब गोविन्द न आएंगे।
कल तक केवल अंधा राजा,
अब गूंगा-बहरा भी है।
होंठ सिल दिए हैं जनता के,
कानों पर पहरा भी है।
तुम्हीं कहो ये अश्रु तुम्हारे,
किसको क्या समझाएंगे?
उठो द्रौपदी वस्त्र सम्भालो,
अब गोविन्द न आयेंगे।



33

जुलाई - 2023



प्रार्थना : परमात्मा से आत्मा का मिलन

प्रवचन- उपाध्याय अमरमुनि
संकलन- साध्वीश्री शुभम्

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने महाश्रमणों ने और सत्य के द्रष्टाओं ने, सत्य को केवल सुना ही नहीं था, केवल पुस्तकों के माध्यम से पढ़ा ही नहीं था, प्रत्युत उस परम सत्य का साक्षात्कार किया था। वे सत्य के साक्षात् द्रष्टा थे। उन महामनीषियों ने प्रातःकाल प्रभु चरणों में समर्पित श्रद्धा-भक्ति की बात कही है, प्रार्थना की बात कही है। उनकी दिव्य-दृष्टि में प्रातःकाल की इस मंगल वेला में प्रभु चरणों में अर्पित किए गए श्रद्धा सुमन जीवन विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। जीवन में चेतना का संचार हो, स्फूर्ति बनी रहे, इसके लिए प्रातः की प्रार्थना आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति में, भारत की सभी परम्पराओं में प्रार्थना करने की परम्परा प्राचीन काल से रही है। यह बात अलग है कि भक्त के विभिन्न रूप रहे हैं। भक्त भी अनेक प्रकार के हो सकते हैं। साधकों की श्रेणियाँ प्रायः अलग-अलग होती हैं। अतः उनकी साधना के स्तर भी अनेक हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न परम्पराओं में प्रार्थना के शब्द भी अलग-अलग

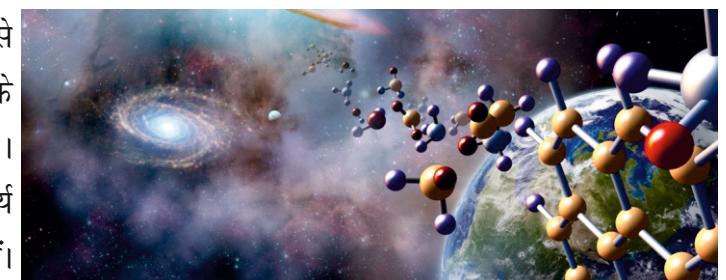
मिलेंगे। उनकी पद्धतियाँ भी अलग-अलग होंगी। अतः अनेकरूप होना अस्वाभाविक नहीं है। देश-काल एवं परिस्थितियों तथा परम्पराओं की भिन्नता के कारण कुछ-कुछ अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उसके अनेकत्व में भी एकत्व झलकता है। भिन्नता में भी अभिन्नता परिलक्षित होती है। वृक्ष को आपने देखा है- उसकी अनेक शाखा प्रशाखाएँ हैं, हजारों-हजार पत्ते हैं। पुष्प जब खिलते हैं, तो हजारों-हजार फूल खिल उठते हैं और कुछ ही समय बाद देखते ही देखते सारा पेड़ हजारों-हजार फलों के बोझ से धरती के चरण स्पर्श को झुक जाता है। इस प्रकार वृक्ष के अंकुरित होने के बाद उसका विस्तार होता जाता है। आप कहते हैं- यह आम का वृक्ष है, ये आम की शाखाएँ हैं, ये आम के पत्ते हैं, यह आम की मंजरी है, ये आम के फल हैं। सब कुछ अलग है, अनेक रूपों में हैं, परन्तु आम का सम्बन्ध सबके साथ है। सब रूपों में आम गूंज रहा है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में

अनेकता में एकत्व का स्वर गूंजता रहा है। आज ही नहीं, लाखों-करोड़ों वर्षों से प्रार्थना के स्वर, भाषाएँ, मुद्राएँ, पद्धतियाँ अलग- अलग होते हुए भी उन सबका मूल स्वर एक रहा है। वह है- आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन। आत्मा का परमात्मभाव में परिणमन। संसारी आत्मा निचले धरातल पर है। नीचे के धरातलों में भी अन्तर है, काफी अन्तर है। कितना ही अन्तराल हो, आत्मा उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए सचेष्ट है। यही भक्ति है। परमात्म-तत्त्व, जिसके भिन्न-भिन्न नाम रूप में लिए हुए हैं, परन्तु वह ज्योति स्वरूप है, वह प्रकाशमय है, वह अनन्त चैतन्य का विशुद्ध रूप है, इसमें किसी तरह का मतभेद नहीं है। उस परम चैतन्य के साथ, अनन्त ज्योतिर्मय चेतना के साथ साधारण चैतन्य का जो मिलन है, रूपान्तर है, वह प्रार्थना है। सैद्धान्तिक शब्दों में कहें तो भावना है, भक्ति है।

अनन्त-अनन्त काल से संसार में, अज्ञान के अंधेरे में इतस्ततः भटक रहा चैतन्य अधोमुखी रहा है। अपने स्वरूप का बोध नहीं होने से उसकी चेतना नीचे की ओर रही है। आप जानते हैं कि जो सूर्य से अधोमुख रहेगा, उसे सूर्य के दर्शन कदापि नहीं होंगे। ऊर्ध्वमुख होने पर ही उसे सूर्य दर्शन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

इसी प्रकार ये प्रार्थनाएँ भी चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए हैं। भगवान् महावीर के चरणों में जब भी कोई साधक पहुँचता और जब उसे प्रभु के दर्शन एवं वाणी से अपने स्वरूप का, निजत्व का, अपने अन्तर में सोये हुए देवत्व का, अपने अन्तर के परम-तत्त्व का बोध होता, तब वह प्रभु से कहता- भगवन्! आपने मुझे औंधे से सीधा किया अर्थात् अधोमुख से ऊर्ध्वमुख बनाया। यदि धरती पर पात्र को औंधा रख दिया जाय और उस पर धुंआधार वर्षा बरसती ही रहे, तो क्या उस पात्र में जल की एक भी बूंद पड़ेगी? नहीं, वह एक बूंद भी ग्रहण नहीं कर सकेगा। अपेक्षा है, उस पात्र को सीधा करने की। फिर उसमें एक-एक बूंद संचित होती जायगी और वह पूर्णता की ओर बढ़ता जायगा। याद रखिए, सूर्यमुखी फूल जब सूर्य की किरणों का संस्पर्श पाता है, तो खिल उठता है। इसी प्रकार ये प्रार्थनाएँ, ये भक्ति गीत और ये बन्दनाएँ भी अनन्त-अनन्त काल से औंधे पड़े हमारे चेतना के पात्र को सीधा करना है, उसे ऊर्ध्वमुखी बनाना है।

भक्ति का, साधना का, जो पहला अंग



है, वह है श्रद्धा। इसलिए आप कहीं पर हों, कैसी भी स्थिति परिस्थिति में हों, कैसे भी बातवरण में हों, कुछ क्षण प्रभु स्मरण के लिए अवश्य दें। आप काम-धंधों में अधिक व्यस्त हैं, इसलिए अधिक समय नहीं दे पाते हैं, फिर भी कुछ क्षण तो दे ही सकते हैं। यदि कुछ क्षण के लिए भी आपका उस महाप्रकाश से मिलन हो जाता है, तो बहुत बड़ी बात है। जैन-परम्परा के महान् आचार्य मानतुंग, जिनका नाम आपने सुना होगा? जिनकी कीर्ति-गाथाएँ भी आपने सुनी होंगी? उनकी श्रद्धा-भक्ति के चमत्कार की कहानी भी आपने सुनी-पढ़ी होगी? वह महान् आचार्य प्रभु के चरणों में श्रद्धा के पुष्प चढ़ा रहा है और उसके मुख से उच्चरित हर श्लोक से बन्धन टूटते जा रहे हैं।

प्रभु की स्तुति करता रहा और बन्धन टूटते गए। झोंपड़ी से लेकर राजमहलों में रहनेवाले हजारों-हजार लोग उस भवन के बाहर खड़े थे, जिसमें राजा ने महान् आचार्य मानतुंग को बन्द कर रखा था और उसमें



एक-दो नहीं, 48 ताले लगा रखे थे। लोग सारी रात उत्सुक होकर यह देखते रहे कि यह महान् सन्त इन बन्धनों को तोड़कर कैसे मुक्त होता है? कैसे बाहर आता है? पर, यह कौन जानता था कि ये बन्धन तो अड़तालीस ही हैं, यह आत्मा तो भक्ति की तेज धारा से लाखों-लाख बन्धनों को तोड़कर बाहर आता है। श्रद्धा-भक्ति की ज्योति जब प्रज्वलित होती है, तब अनन्त-अनन्त काल के बन्धनों को टूटते देर नहीं लगती।

भारत के अनेक दार्शनिक, विचारक इस अनन्त के प्रश्न को लेकर निराशा के भंवर में उलझ गए। आचार्य जैमिनी अपने युग के महान् दार्शनिक थे, मैं उनकी प्रज्ञा का, बुद्धि का आदर करता हूँ, परन्तु कभी-कभी बड़े-बड़े आचार्यों को भी निराश घेर लेती है। उन्होंने कहा कि ये अनादि के बन्धन, अनन्त काल से चले आ रहे बन्धन, कभी टूटेंगे नहीं। इसलिए आत्मा की कभी मुक्ति नहीं होगी। अतः मुक्ति शब्द अपना कोई अर्थ नहीं रखता। उत्तर काल में अनेक महर्षियों ने, स्वामी दयानन्द जैसों ने भी कहा कि सदा-सर्वदा के लिए मुक्ति जैसी कोई चीज नहीं है। ऐसा क्यों कहा गया? जब अनादि और अनन्त की बात सामने आती है, तो व्यक्ति एक तरह से निराश हताश हो जाता है। इतने पुराने बन्धन को कैसे तोड़ सकुंगा? और वह परम चैतन्य की शक्ति

को भूलकर निराशा के अंधकार में भटक जाता है। परन्तु जैन दर्शन सार्वजनिक उद्घोषणा के साथ इस सत्य को स्वीकार करता है कि आत्मा जब जागृत होता है, तो वह अनादि के अनन्त बन्धन को तोड़कर परमात्मा बन जाता है। परमात्म-ज्योति कहीं बाहर नहीं है, वह स्वयं व्यक्ति में ही निहित है। जब तक वह माया के, मोह के पाश से बंधा है, तब तक वह साधारण जीव है और जब वह पाश को तोड़ देता है, तब वह शिव हो जाता है। साधारण जन ही एक दिन जिन हो जाता है। भारत के महामनीषी आचार्यों ने परम विश्वास के साथ कहा था—“पाशबद्धो भवेज्जीव पाशमुक्तो तथा शिव”

जब तक आत्मा मोह के वश कर्म के जाल में, माया के पाश में आबद्ध है, तब तक यह संसारी प्राणी है, दीन-हीन है, कीट-पतंग है और धरती पर रेंगता हुआ साधारण जीव है। लेकिन जब अन्तर में भक्ति की ज्योति जलती है और वह माया के पाश को तोड़ देता है, तब उस सघन अंधकार को दूर होते देर नहीं लगती। भले ही वह अंधकार अनन्त-अनन्त काल का भी क्यों न चला आ रहा हो, प्रकाश की एक किरण के उदित होते ही वह पूर्णतः समाप्त हो जाता है। घुप अंधकार को प्रकाश में बदलने की क्षमता एक ज्योतिर्मय किरण में है। आपने देखा है कि गहरी गुफाओं में कितना सघन अंधकार होता है। और कितने पढ़ते-पढ़ते अड़तालीस ताले टूट गए। वे बन्धन

हजारों-हजार, लाखों-लाख वर्षों एवं युगों से अंधकार से आवृत हैं, किसे पता है। एक नन्हा-सा दीपक लेकर, एक छोटी-सी टार्च लेकर आप उस गुफा में प्रवेश करते हैं, तो युगों से वहाँ आसन जमाकर रह रहे अंधकार को दूर होने में कितनी देर लगती है? कितना समय लगता है? कुछ भी तो समय नहीं लगता। टार्च का बटन दबाया और अंधकार लुप्त। दीपक को प्रज्वलित किया और देखा तो अंधकार का कहीं अता-पता नहीं। क्या कभी ऐसा भी होता है— दीपक जलाया है, अब वह दो-चार दिन तक जलेगा, उस सघन एवं लम्बे समय से वहाँ रह रहे अंधकार से लड़ेगा, तब कहीं प्रकाश का राज्य होगा? ऐसा कभी नहीं होता। इधर प्रकाश की ज्योति जली और उधर अंधकार टूटा। भले ही अंधकार की आयु कितनी ही लम्बी क्यों न रही हो, वह अनन्त काल से ही वहाँ आसन जमाकर क्यों न बैठा हो, एक-ज्योतिर्मय किरण उसके लाखों वर्षों के अस्तित्व को एक क्षण में ही समाप्त कर देती है। भक्ति की ज्योति में भी वही शक्ति है। परन्तु, वह ज्योति प्रज्वलित होनी चाहिए। आचार्य मानतुंग इसी श्रद्धा के, इसी विश्वास के धनी थे। उनके अन्तर्मन से भक्ति का स्त्रोत प्रस्फुटित हुआ, श्रद्धा की दिव्य ज्योति जगी और प्रभु चरणों में समर्पित स्तोत्र के अड़तालीस पदों को रचते रचते एवं पढ़ते-पढ़ते अड़तालीस ताले टूट गए। वे बन्धन

से मुक्त हो गए। जब वे बाहर आए तो हजारों-हजार कण्ठों से ध्वनि जय-जयकार से आकाश गूँज उठा, राजा से लेकर रंग तक सब उस तेजस्वी व्यक्तित्व के चरणों में न त मस्तक हो गए। उस स्तोत्र में, जो भक्तामर के नाम से जन-जन में प्रसिद्ध है, आचार्य कहते हैं—

**“आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त दोषम्,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाज्जिः॥”**

प्रभो! आपका स्तवन, गुण-कीर्तन समस्त दोषों से रहित है। भाग्यशाली हैं वे जिन्हें आपके स्तोत्र पढ़ने का सौभाग्य मिलता है, आपके नाम-स्मरण का सौभाग्य मिलता है। यदि भावपूर्वक आपका एक वार भी स्मरण कर ले, तो उसके जितने दुरित हैं, पाप हैं, सब नष्ट हो जाते हैं। आपके सत्संग में वह क्षमता है कि उस दिव्य ज्योति के जीवन में प्रज्वलित होते ही हजारों-हजार भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं। आपके गुणों का संकीर्तन, आपकी पुनीत कथा भी दुष्कर्मों के अंधकार को नष्ट कर देती है। क्षितिज पर सूर्य के उदित होने के पूर्व ही अंधेरा गायब होने लगता है। आप देखते हैं— अभी सूर्य उदित ही नहीं हुआ है, कुछ ही किरणें आगे आई हैं और उन्होंने रात के काले मुँह को उजला बना दिया है।



उषा काल का दृश्य कितना अद्भुत होता है! कितना सुहावना होता है! उषा रात्रि के काले कलुषित रंग को धोकर सुनहरा रंग बिखेर देती है। उदयाचल स्वर्णिम आभा से खिल उठता है। रात-रात भर के मुझाए कमल विकच उठते हैं सूर्य की स्वर्णिम रशियों का मृदु स्पर्श पाकर सूर्य तो दूर है, बहुत दूर है। पर, उसकी किरणों का, उसकी प्रभा का क्षणिक स्पर्श ही कमलों को विकसित कर देता है मूर्छित से सचेतन बना देता है। अन्दर और बाहर में, कण-कण में स्फूर्ति का संचार हो जाता है।

इसी प्रकार मानव के हृदय कमल में प्रभु के स्मरण की किरणों का स्पर्श हो जाय, तो हृदय कमल भी खिल उठे, महक उठे। भक्ति की, श्रद्धा की, निष्ठा की ज्योति जगते ही जीवन-कमल में प्रेम की, स्नेह की सौरभ महकने लगती है, दया के, करुणा के, क्षमा के अद्भुत भाव जाग उठते हैं। इस दृष्टि से साधक की भाव-साधना, अन्तर-ज्योति महत्वपूर्ण है। भले ही वह स्मरण थोड़े समय

किया गया हो या अधिक लम्बे समय तक किया गया हो, उसका महत्व नहीं है। महत्व इस बात का है कि वह अन्तर-हृदय से किया गया है। साधना में तौल का नहीं, भावना का मूल्य है। बाहर में छह-छह महीने के तपस्वी भी औंधे पात्र की तरह खाली रह जाते हैं और एक नवकारसी का तप करनेवाले साधक का हृदय पात्र भक्ति के अमृत से लबालब भर जाता है। यदि भाव की ज्योति प्रज्वलित है, तो नवकारसी का तप भी महत्वपूर्ण है। बाहर का तप सिर्फ एक प्रक्रिया है, साधन है, निमित्त है, और सही अर्थ में वह तप भी तभी है, जब भावों में अध्यात्म भावरूप तप की ज्योति प्रज्वलित है। अभिप्राय यह है कि प्रभु की स्मृति व्यक्ति को प्रभुमय बना देती है, आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देती है। और भक्त से सहज ही यह स्वर मुखरित हो उठता है—

“तव पादौ मम हृदये,
मम हृदयं तवपदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्,
यावन् निर्वाण-सम्प्राप्तिः”
हे प्रभो! आपके चरण मेरे हृदय में प्रवेश कर जायें और मेरा हृदय तेरे चरणों में लीन हो जाये। और तुम्हारे चरणों में मेरे हृदय की यह लीनता तब तक बनी रहे, जब तक मैं तुम्हारे स्वरूप को प्राप्त न कर लूँ अर्थात् मैं मैं न रहूँ, जो तू है वही में बन जाऊँ। मैं तू का रूप ले ले अर्थात् दोनों एक हो जाय। भक्त और भगवान् अलग-अलग न रहकर एक हो जाएँ। यह प्रार्थना का मूल ध्येय है। इस भावना का विस्तार ही जीवन का विकास है। अतः भावना की यह ज्योति आप सब के अन्तर्मन में प्रज्वलित रहे और उसके आलोक में आप से सहज ही यह स्वर मुखरित हो उठता है— निरन्तर साधना-पथ पर बढ़ते रहें।

स्मृति पुष्टि

आगरा के प्रमुख उद्योगपति, प्रकाशन समूह के संचालक एवं दानवीर श्री प्रेमचन्द्र जैन चपलावत का विगत 12 अगस्त 2023 को सायं 4:30 बजे आगरा निवास स्थान पर निधन हो गया। श्री जैन पिछले कई मास से लिवर की बीमारी से ग्रस्त थे। देश के प्रमुख चिकित्सकों द्वारा इलाज होने पर भी उन्हें नहीं बचाया जा सका। शरीर की नश्वरता का उन्हें पूर्वभास हो गया था फलतः उन्होंने दवाई, भोजन, जल आदि सभी का त्याग कर आचार्यश्री चन्दनाजी “श्री ताई माँ” की आज्ञा से संथारा पद्धति ग्रहणकर आराधना के साथ अपना लौकिक शरीर छोड़ा। आपने अपने पीछे माता श्री शीलावन्ती जैन, धर्म पत्नी हेमलता जैन, दो पुत्र श्री रवि



जैन एवं अतुल जैन, दो भाई श्री नरेश जैन और श्री मुकेश जैन तथा भरा-पूरा परिवार छोड़ा है।

श्री प्रेमचन्द्र ने अपने अध्यवसाय, लगन एवं कठोर श्रम से व्यापार जगत के प्रकाशन क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किये हैं। 'रतन प्रकाशन मन्दिर' द्वारा प्रकाशित योग्य एवं अनुभवी विद्वानों और प्रोफेसरों द्वारा लिखित पुस्तकों देश के लगभग सभी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं स्कूलों में पढ़ाई जाती है। सन्मति ज्ञानपीठ एवं वीरायतन के साहित्य प्रकाशन में आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

श्री प्रेमचन्द्र ने मुद्रण की नवीनतम तकनीकियों का प्रयोग अपने प्रकाशन में किया है। परीक्षोपयोगी सामग्री के साथ ही आपने प्रतियोगी परीक्षाओं की भी पत्रिका निकाली थी।

प्रेमचन्द्र जैन धर्म के विभिन्न संगठनों को तन, मन, धन से सोंचा करते थे। पिताश्री के निधन के पश्चात् उनकी स्मृति में 'सेठ पदमचन्द्र जैन व्यावसायिक एवं प्रबंधन संस्थान' की स्थापना कर आगरा की जनता को एक अमूल्य धरोहर प्रदान की है। वर्तमान में यह संस्थान डॉ. बी.आर.ए.वि.वि. द्वारा संचालित है तथा यहाँ से शिक्षा प्राप्त लोग देश-विदेश में उच्च स्थानों पर कार्यरत हैं। पूज्य गुरुदेव और आचार्यश्रीजी के प्रखर चिन्तन प्रकाश से पूरा परिवार आलोकित है।

श्री प्रेमचन्द्र जी के परिजनों ने भी धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं। श्री नरेश जैन द्वारा गरीबों एवं मजदूरों के लिए दस रुपये में भोजन की व्यवस्था स्थान-स्थान पर की गयी है। साथ ही अपने प्रकाशन की पुस्तकों को गरीब एवं जरूरतमन्दों को निःशुल्क वितरित करते हैं।

श्री मुकेश जैन ने 'हैल्प आगरा' की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा 'सत्यमेव जयते संस्थान' के माध्यम से वे निरन्तर समाज सेवा में जुटे रहते हैं। श्री प्रेमचन्द्र के परिजनों ने मिलकर फिरोजाबाद के कैसर संस्थान को चार करोड़ रुपये का दान दिया है।

श्री प्रेमचन्द्र धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि लेते थे। उन्होंने अनेक साध्वियों एवं श्रमणों की बी.ए., एम.ए. और पी.एच.डी. की डिग्रियाँ प्राप्त करने में सहयोग दिया था। समाज के गरीब जरूरतमन्दों को वे सदैव सहायता किया करते थे। विकलांग सहायता केन्द्र के वे सचिव थे। उनका पूरा परिवार ही धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में खूब भाग लिया करता है।

पूज्य गुरुदेव राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनिजी महाराज, पद्मश्री एवार्ड से सम्मानित आचार्यश्री चन्दनाश्री जी के प्रति पीढ़ियों से आपका परिवार समर्पित रहा है। वीरायतन की उद्घोषणा मोतीकटरा आगरा में 1971 को हुई थी। 50 वर्ष की आपकी सुदीर्घ सेवा वीरायतन परिवार के लिए अविस्मरणीय सेवा है। आगरा जैनसंघ और वीरायतन परिवार अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करता है।



पूज्य ताई मां के आशीर्वाद

एवं प्रेरणा से वीरायतन, कच्छ में लंदन के Volunteers के सानिध्य में खेल उत्सव (Sports Day)



लंदन Volunteers ने कहा Thank you Tai Ma! We will be ever grateful to you for giving us this opportunity of Seva.



'Shri Amar Bharti' printed and published at Patna by Navin Chand Suchanti
on behalf of VEERAYATAN, Rajgir. Dist. Nalanda, Rajgir-803116 (Bihar)
Website : www.veerayatan.org